प्रथम संस्करण : १९५७

मूल्य : तीन् रुपए

बेंगलूर् प्रेस्
मैसूर् रोड्, बेंगलूर्–२

अनुवादक का निवेदन

अनुवादक का काम भाषान्तर करना है, मूल-लेखक के वाक्यों, अथवा विचारों, का संशोधन वा व्याख्या करना नहीं। जहां उन पर टीका-टिप्पणी करना अनुचित है, वहाँ विशेष भावों को अनुवाद में से छोड़ जाना भी एक अनधिकार चेष्टा है। अनुवाद करते समय, प्रत्येक शब्द का अर्थ दूसरी भाषा में दिया जा सकता है, जिसे शब्दार्थ कहते हैं; कई अनुवादक वाक्यार्थ में निष्ठा रखते हैं, और प्रत्येक शब्द का पर्याय-वाची ढूंढने के कष्ट से बच जाते हैं। कई केवल भावार्थ देकर ही अपने को कृत-कृत्य मान लेते हैं।

हमारी यह निश्चित सम्मति है, कि एक अच्छा अनुवाद वह होता है, जिन में न केवल मूल-लेखक ले विचार और भाव यथावत् आ जाएँ, प्रत्युत प्रत्येक शब्द का समीचीन पर्याय भी दिया जाय, एवं मूल भाषा में जो वैयाकरणिक विलक्षणताएँ हैं, उन की झलक भी अनुवाद में पाई जाय। इन तीनों बातों को जो अनुवादक निभा सके, उसे एक कुशल भाषान्तर-कर्ता समझना चाहिए। हम नहीं कह सकते, किस अंश तक हमें इस लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता हुई है, पर यह हमारी दृष्टि से कभी ओझल नहीं हुआ।

डॉ० रामन् ने अपनी मौलिक पुस्तक एक लच्छेदार भाषा में लिखी है, जिस में ज्यौतिष तथा आधुनिक विज्ञान के

अतिरिक्त, भाषा के क्षेत्र में भी उन्हों ने अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है। और हम अपने कर्तव्य-पालन में उल्लंघन के दोषी ठहरते, यदि उन की लेखन-शैली—जटिल वाक्य-रचना, गम्भीर शब्द-प्रयोग तथा वाग्धाराओं की प्रचुरता—की झलक हिन्दी पाठकों तक न पहुँचाते। डॉ० रामन् की कृति, जहाँ तक हमारा ज्ञान है, इस देश में अपने ढंग की प्रथम पुस्तक है, और हिन्दी में तो इस प्रकार की कोई पुस्तक हमारे सुनने में भी नहीं आई।

राष्ट्र-भाषा हिन्दी की साहित्यिक शैली के विषय में भी हमारा एक दृढ निश्चित मत है। हम खिचड़ी-भाषा में निष्ठा नहीं रखते, और न ही अरबी, फ़ारसी, उर्दू आदि का अनावश्यक प्रयोग हिन्दी की उन्नति के लिए अनिवार्य समझते हैं। उच्च-कोटि के साहित्य का माध्यम संस्कृत-निष्ठ भाषा होनी चाहिए, चाहे वह हिन्दी हो, चाहे पंजाबी, बंगला वा मराठी। इस प्रकार प्रान्तीय भाषाओं के स्थानिक भेद लुप्त होते जाएँगे, और राष्ट्र की एकता में वृद्धि होगी। भाषा में कृत्रिम अलंकार आवश्यक भूषण हैं; जङ्गल का प्राकृतिक दृश्य सुहावना लगता है अवश्य, पर दूर से। मनुष्य का रहन सहन तो कृत्रिम विधि से संस्कार किए हुए उद्यान में ही सम्भव है, वन में नहीं। तथैव साहित्य की भाषा का लौकिक प्रयोगों से भिन्न होना वाञ्छनीय भी है, और सम्भव भी। हम ने इस पुस्तक को अनुवाद के लिए केवल ज्यौतिष के प्रचारार्थ ही नहीं चुना, प्रत्युत हिन्दी की उन्नति की दृष्टि से भी। ...

दो चार शब्द पारिभाषिक शब्दों के विषय में भी। हम ने स्वयं डॉ० रघुवीर के संग 'आङ्गल-भारतीय महा-कोष' की रचना में काम किया है, अतः अधिकांश परिभाषाएँ तो हमारी अपनी हैं, जो उस कोष में से ली गई हैं। कुछ वंगला अभिधान 'चलन्तिका' से गृहीत हैं। कहीं कहीं एक ही अंग्रेज़ी शब्द के लिए हम ने हिन्दी में दो, वा तीन, शब्द प्रयुक्त किए हैं। इस का कारण प्रमाद नहीं, वरन् अर्थ भेद हैं। यथा, 'objective study' और 'objective world' में 'objective' का अर्थ एक-सा नहीं है, इस लिए इन का अनुवाद हम ने क्रमशः 'निरपेक्ष अध्ययन' और 'वस्तुमय संसार' किया है। आशा है, पाठक अन्यत्र भी इस प्रकार की सूक्ष्मताओं को ध्यानपूर्वक पढ़ने का कष्ट करेंगे। हाँ, 'रविकलंक' और 'सूर्य-कलंक' इत्यादि शब्दों में अर्थ-भेद नहीं, केवल पाठकों को दोनों प्रयोगों से परिचति कराने के लिए उभयरूप दिए हैं। हमें अपने पूज्य मित्र, पण्डित हंसराज जी कपिल, ज्योतिषाचार्य, का हार्दिक धन्यवाद करना है, जिन की सहायता हमें विविध प्रकार से सदैव प्राप्य रही।

ओं प्रकाश कहोल.

ज्यौतिष और आधुनिक विचार-धारा

भूमिका

इस पुस्तक में मैं ने ज्यौतिष-विद्या का पक्ष युक्तियों द्वारा सिद्ध करने का यत्न किया है, तथा इस मिथ्या धारणा का खण्डन करने की चेष्टा की है, कि ज्यौतिष में विश्वास रखने का अर्थ अनिवार्य भाग्य-वाद (fatalism में विश्वास है, जो मनुष्य की उद्योग-वृत्ति को क्षीण, तथा मानव-प्रगति को अवरुद्ध, करता है। 'भाग्य' और 'स्वछन्दबुद्धि' (free-will) दोनों सापेक्ष (relative) संज्ञाएं हैं। विज्ञान को यह शोभा नहीं देता, कि संसार के नाना पदार्थों को यदृच्छा (chance), अथवा तथोक्त आवश्यकता, पर छोड़ दे।

ज्यौतिष, कर्म वाद आदि के सम्बन्ध में बहुत से भ्रम और मिथ्या विचार फैले हुए हैं, जिन का कारण कुछ तो अज्ञान है, कुछ उदासीनता, और सब से बढ़ कर, मन में पहले से बसी हुई बातें हैं।

ज्यौतिष-शास्त्र के पास सब से प्रबल हथियार अपेक्षा-वाद (relativity) है; इस शास्त्र का मूलाधार यह तथ्य है, कि सूर्य से लेकर बड़े बड़े ग्रहों तक, और एक ग्रह से दूसरे तक, एक प्रकार की आकाश व्यापी (ethereal) तरंगें फैली हुई हैं। जिस वस्तु को हम अन्तरिक्ष कहते हैं, वह वास्तव में एक प्रकार का जालसा है, जिस में विभिन्न शक्तियाँ एक दूसरी

को प्रभावित कर रही, और स्वयं प्रभावित हो रही हैं। इन परस्पर प्रक्रिया-शील शक्तियों का तन्तु-जाल ही यह स्थल (space) है।

मैं ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है, कि कर्मवाद की कल्पना मनुष्य की तृष्णापूर्ति के लिए घड़ा गया एक ढकोसला नहीं है; यह गम्भीर चिन्तन और मनन की उपज है, जिस की आधारशिला कारण-कार्य, अथवा हेतु-हेतुमत्, का नियम है, जो कि भौतिक-आविर्भूतियों (physical phenomena) में स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है। मैं ने **बर्ट्रेण्ड्-रस्सल्, युङ्, प्लङ्क्, हाईसन्-बर्ग्, बोर् और एडिङ्-टन्** के उद्धरण दे कर दर्शाया है, कि आधुनिक विचार उस वास्तविकता की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जो भारतीय मनीषियों ने सहस्रों वर्ष पूर्व खोज ली थी। वस्तुतः मैं ने पूर्व काल से चलती आई विचार-परम्परा को आधुनिक विचारों के साथ मिलाने की चेष्टा की है। देश, काल, भौतिक पदार्थ और ब्रह्माण्ड के विषय में नवीन मन्तव्यों ने यह उजागर कर ही तो दिया है, कि ज्यौतिष-शास्त्र उस सम्बन्ध को सूचित और प्रदर्शित करता है, जो मनुष्य के चेतन 'अहं' और प्रकृति में विद्यमान है।

कोई भी वैज्ञानिक-पण्डित यह मानने को उद्यत नहीं, कि ज्यौतिप से सम्बन्ध रखने वाली नाना समस्याओं की जाँच-पड़ताल उन तथ्यों की सहायता से की जानी चाहिए, जिन के सच होने का निर्णय हो चुका है; उन के विषय में निराधार बातें बनाना, और उन की व्यर्थ निन्दा करना, उन के सुलझाने

की ठीक विधि नहीं है। पर यह बात तो हमारे वैज्ञानिक विरोधियों को अपने स्वभाव के प्रतिकूल प्रतीत होगी। जैसे कि **डॉक्टर् रिचर्ड् गार्नेट्** ने लिखा था,

"निर्मूल तर्क-वितर्क की अपेक्षा तथ्यों को समझना और प्रकृति की आंखें खोल कर देखभाल करना, अधिक आवश्यक है। ज्यौतिष के विरुद्ध जो भी युक्तियां दी जाती हैं, उन की पड़ताल करने से पता चलता है कि आपत्ति करने वाले लोग सच्ची बातों को मानते हुए में भी हिचकचाते हैं और सर्वथा अवैज्ञानिक मनोवृत्ति का परिचय देते हैं।"

यदि मैं आधुनिक विचारकों में ज्यौतिष की सत्यता की पड़ताल करने के लिए कुछ ठोस अभिरुचि तथा लगन का संचार करसकूँ, तो अपने प्रयास को सफल समझूँगा।

बेंगलूर्,
१९-१-१९५०.

बी० वी० रामन्.

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
अनुवादक का निवेदन ...	iii
भूमिका ...	vii
प्रथम प्रकरण : अवतरणिका ...	१
द्वितीय प्रकरण : ज्यौतिष और कर्म ...	२३
तृतीय प्रकरण : ज्यौतिष क्या है ? ...	४७
चतुर्थ प्रकरण : ग्रह और मानव ...	५९
पंचम प्रकरण : विज्ञान और मूढ़-विचार ...	९४
षष्ठ प्रकरण : पारिसांख्यानिक साक्ष्य ...	१०७
सप्तम प्रकरण : ऐतिहासिक उदाहरण ...	१३४
अष्टम प्रकरण : भाग्यवाद निरर्थक है ...	१५४
परिशिष्ट : प्रो० कार्ल युङ् का पत्र ...	१७१
अधीत पुस्तकों की सूची ...	१७३

ज्यौतिष और आधुनिक विचार-धारा

प्रथम प्रकरण

अवतरणिका

भारत में ज्यौतिष को सदैव एक विशिष्ट स्थान प्राप्त रहा है और सम्भवतः अंग्रेजों के आगमन और राजसत्ता हथियाने तक इस विद्या को यहां बड़े बड़े ओजस्वी समर्थक मिलते रहे हैं। किन्तु पीछेसे कुछ समय के लिए तत्कालीन शिक्षित भारतीयों में अश्रद्धा और उपहास-वृत्ति मानों बुद्धि का एक मुख्य अंग-सा बन गई; वे ज्यौतिष आदि विषयों से घृणा करने लग गए और इन्हें मूढ़-मति लोगों के अध्ययन के विषय समझने लगे। वस्तुतः ज्यौतिष का अधःपतन अनिवार्य सा प्रतीत होता था। ऐसे समय में स्वर्गीय **प्रोफ़ैस्सर् बी० सूर्यनारायण राव** ने इस विद्या को पुनर्जीवित करने का भार अपने ऊपर लिया और एतदर्थ भारत की सुसंस्कृत जनता का ध्यान एक विचित्र प्रकार की घटनाओं के रहस्य की ओर आकृष्ट किया, जिन्हें अभी तक उपहास का विषय समझने वाले लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक मनस्वी माने जाते थे, और 'विज्ञान-वेत्ता' की सुगम उपाधि से अलंकृत किए जाते थे। कुछ समय तक

तो ज्यौतिष शब्द का प्रयोग मात्र घृणा का उत्पादक वना रहा और इस स्थिति में अनेक व्यक्ति निष्पक्ष हो कर सच्ची वातों का परीक्षण करने में भी संकोच करते रहे।

आज ज्यौतिष का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन करने की इच्छा शिक्षित लोगों की वहुत भारी संख्या में उत्पन्न हो चुकी है। फिर भी कुछ 'वैज्ञानिक' कहलाने वाले और कुछ सामाजिक-कार्य कर्ता ऐसे हैं, जो सम्भवतः इस प्रकार वातें वनाएं, मानों ज्यौतिष जघन्य मूढ़ता है, और वे जीव दयनीय दशामें हैं, जो पुरातन काल से इस में आस्था रखते आए हैं और अव भी रहते हैं। कट्टर-पंथी वैज्ञानिकों ने ज्यौतिष को अभी तक इस लिए नहीं अपनाया, कि उन के मस्तिष्क में यह वात घर किए हुए हैं, कि ज्यौतिष के नियम गम्भीरतापूर्वक विचार किए जाने योग्य ही नहीं हैं; और यह आशंका भी उन के मन में प्रतीत होती है, कि ज्यौतिष को मान लेने से उन का अपना महत्व क्षीण हो जायगा।

हम ने आगामी पन्नों में जो युक्तियां संकलित की हैं, और जो तथ्य समुपस्थित किए हैं, उन से पता चलेगा कि उन **पूर्व-तर्कित** आपत्तियों में कोई सार नहीं, जो इस मत के विरुद्ध दी जाती है, कि ज्योतिर्मण्डल में प्रकट होने वाली आविर्भूतियों, और पृथिवी पर घटने वाली घटनाओं, का आपस में कोई सम्वन्ध है। यह निष्कर्ष कटु हो सकता है, पर यह है नितान्त सत्य, जिस की सारता निरपेक्षरूप से (objectively) सिद्ध की जा चुकी है।

ज्यों ज्यों वैज्ञानिक खोज के क्षेत्र में नवीनता और औत्सुक्य का अंश घटता जाता है, और भौतिक क्षेत्र में नए नए सम्बन्ध (ज़िन पर खोज की सकती थी), निरन्तर अल्प-संख्यक होते जा रहे हैं, त्यों त्यों और गहरे और सूक्ष्मतर सम्बन्धों पर ध्यान देने की आवश्यकता अनिवार्य होती जा रही है। कारण यह, कि मनुष्य एक यान्त्रिक गाड़ी नहीं है। उस के अन्दर स्वतन्त्रता-पूर्वक संकल्प करने की योग्यता तथा बुद्धि है। ज्यौतिष, और इस के विश्व-व्यापी उपयोग, खोज का एक ऐसा क्षेत्र हैं, जिस का विस्तार अनन्त है और जो अन्वेषक उपरि-स्तर से अधिक गहराई तक नहीं जा सकते, उन्हें इस का कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रेत-निष्ठ और यन्त्र-निष्ठ

पश्चिम में मनुष्य के विचार किस प्रकार विकसित हुए हैं, इस पर ध्यान-पूर्वक सोचा जाय तो विदित होता है, कि प्रकृति की कार्य-विधि को समझने के लिए मनुष्य के प्रयत्नों में तीन बड़े बड़े युग, अथवा अवस्थाएँ, आई हैं। उन्हें हम प्रेत-निष्ठ (animistic), यन्त्र-निष्ठ (mechanical) और गणित-निष्ठ (mathematical) अवस्था कहते हैं। जैसे कि **सर् जेम्ज़् जीन्ज़्** ने लिखा है।

"प्रेत-निष्ठा के युग की पहचान यह है, कि मनुष्य भूल-वश यह मान बैठता है, कि प्रकृति की गतिविधि का संचालन ऐसे प्राणी कर रहे हैं, जिन की मनों भावनाएँ और मानसिक विकार मनुष्य के अपने जैसे हैं। क्यों कि मानवाकार ही एक ऐसी वस्तु है, जिस का इसे साक्षात्

स्पष्ट और निकटतम अनुभव है, इस लिए वह प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई साकार रूप वना कर ही उसे समझने का यत्न करता है।"

जीन्ज़् महोदय आगे चल कर कहते हैं।[१]

"एक व्यक्ति का इतिहास उस की जाति के इतिहास का छोटे परिमाण पर खिंचा हुआ चित्र ही तो है। इस लिए मानव-जाति ने अपने शैशव काल में वही (भूलें) की हैं, जो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने वचपन में करता है। ....यूनानी विज्ञान में था क्या? केवल यही धुन्धले से प्रश्न, और इन्हीं के विषय में ढकौसले, कि वस्तुओं को जैसा हम पाते है, वैसी ही क्यों हो गई, अन्यथा क्यों नहीं।"

जिस समय तक मनुष्य ऐसे पदार्थों के साथ ही प्रयोग कर सकता था, जो आकार में उस के अपने शरीर के लग भग तुल्य थे, अर्थात् न उस से वहुत वड़े और न वहुत छोटे, तव तक उसे **निर्जीव और जड़ प्रकृति** कार्य-रूप में ऐसे प्रतीत होती थी, मानो उस के छोटे छोटे कण, जिन से वह वनी है, एक दूसरे को धकेल और खेंच रहे हैं। यह एक प्रकार से यान्त्रिक (mechanistic) विचार-विन्दु था। इस दृष्टि-कोण से प्रकृति को देखा जाय, तो मानना पड़ता है, कि संसार में सव कुछ पहले से ही निश्चित है और भाग्य अटल है। इस विचार को मानने-वाला प्रकृति के कामों को अपने दैनिक जीवन के सुपरिचित

---

[१] विज्ञान की नवीन पृष्ठ—भूमि।

अनुभवों के आधार पर समझाने का यत्न करता है। किन्तु आज, जैसा कि जीन्ज़् कहते हैं :[२]

> "हमें यह दिखाई देने लग गया है, कि मनुष्य से पहली भूल तो मानवीकरण की यह हुई, कि उस ने समझा प्रकृति के कामों में भी उसी प्रकार उच्छृङ्खलता और अकारणता है, जिस प्रकार उस के अपने मन के विकारों की उत्पत्ति में। यह था प्रेत-निष्ठ युग का दृष्टि-कोण (animism)। इस से छुटकारा पाया तो वह एक दूसरी प्रकार की मानवीकरण की भूल (anthropomorphic error) में उलझ गया, और यह समझने लगा कि प्रकृति के काम करने के साधन उस के अपने शरीर के साधनों—स्नायु और पट्ठों—के से हैं। यह था यान्त्रिक-दृष्टि-कोण (mechanism)।"

यह ध्यान देने योग बात है, कि आज कल के वैज्ञानिकों की समझ भी उसी भूल के चक्कर में पड़ गई है, जिसका आरोप जीन्ज़् महोदय ने प्रेत-निष्ठों और यन्त्र-निष्ठों पर लगाया है। प्रेत-निष्ठ और यन्त्र-निष्ट कुछ कुछ वैसे ही आचरण करते रहे हैं, जैसे छोटा बच्चा, अथवा विचार-हीन जांगली। उसी प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक ने अपने उपकरणों और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संचित ज्ञान के आधार पर एक संसार खड़ा कर रखा है, जो कि केवल मात्र अनुमानों पर आश्रित है। एक वैज्ञानिक समझता है, कि जिस युक्ति से उस का समाधान नहीं होपाता,

---

[२] तदेव।

अथवा जो वस्तु उसे असम्भव प्रतीत होती है, उस के विषय में शेष मानव-जाति की धारणा भी वही है, और वही होनी चाहिए। यह सोचना, कि एक आविर्भूति (phenomenon), जो उस की समझ से परे है, वह शेष सब के लिए भी वैसी ही है, मूर्खों की सी बातें करने के समान है। जिन मौलिक नियमों के अनुसार ब्रह्माण्ड और उस के वासियों का नियन्त्रण हो रहा है, उन्हें खोजने का श्रेय प्राचीन हिन्दुओं को ही प्राप्त है[३]।

"ऋषियों के पास एक बहुत सूक्ष्म, विश्वसनीय और व्यापक साधन था, जिस से प्राकृतिक आविर्भूतियों का निरीक्षण किया जा सकता था। वह साधन योग, अर्थात् चतुराशा-व्यापी चैतन्य (four dimensional consciousness) के साथ काम करने की योग्यता थी। इसी के बल पर वे सूक्ष्म-मापक और दूर-दर्शक यन्त्रों के बिना ही इस विश्व के सम्बन्ध में सब बातें जान सकते थे, उन्हें माप और तोल सकते थे, एवं उन का वर्गीकरण कर सकते थे।"

प्रो० बी० सूर्यनारायण राव के शब्दों में, "उन्हों ने जो परम-चैतन्य योग के सुमान्य नियमों का पालन करते हुए, अपने इन्द्रियों की शक्तियों को भीतर ही भीतर प्रचण्ड करके उपलब्ध किया था, उस ने उन्हें इस योग्य बना दिया था, कि वे काल के उन अल्पतम क्षणों को, एवं स्थल के सूक्ष्मतम भागों को, भी अवगत कर सकते, और मन में बिठा सकते थे, जिन्हें ज्ञान के नवीनतम उपकरण भी माप नहीं सकते; तथा

---

[३] मनकरी पाण्डे कृत 'हिन्दू ज्यौतिष'।

काल की अकल्पनीय अवधियों और लोक-लोकान्तरों को भी हृदयंगत कर सकते थे, जिन्हों वड़े से वड़ा दूर-दर्शक यन्त्र भी हमारी दृष्टि में ला नहीं सकता।" मन की एकाग्रता से जो अमूल्य फल प्राप्त किए जा सकते हैं, वह प्रयोगशाला के उपकरणों से नहीं मिल सकते, यदि काम करने वालेके मन में अन्तर्ज्योति (स्वज्ञा) और अभ्यान्तरिक विकास (intuition and internal development) की शक्ति न हो। ब्रह्माण्ड के विषय में आइन्-ष्टाइन् और ऍडिङ्टन् ने जो कुछ कहा हैं, और मनुष्य का उस के साथ क्या सम्वन्ध है, इस विषय में उन्हें अभी जो कुछ कहना है, वह महर्षिगण पहले ही कह गए हैं। उन के निष्कर्ष न तो प्रेतनिष्ठामूलक (animistic) हैं, न यन्त्रात्मक (mechanical) और न ही गणितमूलक (mathematical)। भौतिक संसार की वनावट को समझने और वूझने का यत्न करते समय वैज्ञानिकों का ध्यान अपने गणित के सूत्रों में ही उल्झा रहता है। किन्तु ऋषियों की दृष्टि से अज्ञात कही जाने वाली शक्तियां भी ओझल नहीं रह सकीं, जो भौतिक आविर्भूतियों (material phenomena) के पीछे अदृश्य रूप से विद्यमान हैं। उन्हों ने इस महान तथ्य को पा लिया था, कि मनुष्य सारे संसार का प्रतिविम्व है, और इस में समस्त संसार की झलक पाई जाती है। इसी मौलिक सत्य को अवगत करने अथवा समझने की कुञ्जी ज्यौतिष है।

वैज्ञानिक लोग वाह्य-प्रकृति (external nature) सम्वन्धी अपना मत तथा विचार विन्दु समय समय पर परिवर्तित करते रहे हैं, और उन्हों ने देश, काल और द्रव्य के विषय में विचित्र

कल्पनाएँ घड़ने के पश्चात् हिन्दु दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में पदार्पण किया है। अपि तु, मनो-वैज्ञानिकों को भी इस वात का आभास होता जा रहा है, कि अन्तःकरण स्वयं भी वाहरी संसार को प्रभावित कर सकता है। यह रहस्य तथोक्त वैज्ञानिक विद्या के उदय होने से वहुत पूर्व हिन्दुओं को विदित हो चुका था। वैज्ञानिक जहां भी दृष्टि-पात करता है, उसे जीवन के रहस्यों से दो-चार होना पड़ता है, और फलतः वह अन्धकार में टिटोलता हुआ वहीं का वहीं रह जाता है। जव तक वह ज्यौतिष की महत्ता को नहीं मानता, उस के लिए यह मौलिक समस्या सदा रहस्य ही वनी रहेगी, कि मनुष्य क्या है, और संसार में उस का क्या स्थान है। ज्यौतिप-विद्या उस सम्वन्ध को ध्यान में रखती है, जो मनुष्य और विश्व-ब्रह्माण्ड के वीच विद्यमान है।

आधुनिक विचारों की ज्यौतिष से टक्कर

हम ऊपर कह आए हैं, कि पाश्चात्य वैज्ञानिक विचारधारा को तीन मुख्य युगों में विभक्त किया जा सकता है, अर्थात् प्रेत-निष्ठामूलक, यन्त्र-निष्ठामूलक और गणितमूलक (animistic, mechanistic and mathematical) इन तीनों के क्रमानुसार, ज्यौतिप सम्वन्धी विचारों के भी तीन पड़ाव (stages) हैं। आरम्भ में यह माना जाता था, कि ग्रह-पिण्ड आराध्य देवता हैं, जिन की पूजा की जानी चाहिए। यह प्रेत-निष्ठा की अवस्था कही जा सकती हैं, और आज भी ज्यौतिप के उस अंग में, जिस का सम्वन्ध रोग-निवारण से है, इस का एक मुख्य स्थान है। 'प्रेत-निष्ठा' का शव्द भी हम

ने इस लिए प्रयोग किया है, कि किसी को वुरा न लगे; यह केवल एक आलंकारिक प्रयोग है; पाश्चात्य लोगों की 'प्रेत-निष्ठा' में, और इस में, वहुत अन्तर है; वस्तुतः इन में कोई भी लगाव नहीं। दूसरी अवस्था में ज्यौतिष का क्षेत्र "जीवन की क्रियाओं की पुनरावृत्ति" (periodicity of life-processes) को खोल कर समझाने और सुलझाने तक सीमित था। भौतिक संसार में इस से मिलता जुलता उदाहरण 'वैज्ञानिक-यन्त्र-वाद' (mechanism of science) है। तृतीय अवस्था में ज्यौतिष उन व्यक्तियों के आन्तरिक प्रकृति में शारीरिक और "मनो वैज्ञानिक व्यवस्था (order) स्थापित करने का साधन वना, जिन का मानसिक समतुलन (balance of mind) विगड़ चुका था।"[४] अभी वहुत दिन नहीं वीते, कि विजुली और रेडियो-प्रक्रिया (radio-activity) ने मनुष्य को वे वे वातें सिखाईं, जिन्हें हम वीसवीं शताव्दी के भौतिक विज्ञान के चमत्कार कह सकते हैं। यह विचारों का एक नया ही संसार हैं, जो खोज के लिए खुला पड़ा है; और इस अज्ञात और अज्ञेय क्षेत्र की कुञ्जी ज्यौतिष से ही उपलव्ध होगी।

अज्ञात वस्तुओं को समझने की एक विधि, अथवा साधन, उपमाएँ हैं, किन्तु "उपमाओं के नियम में यह वात पहले माननी पड़ती है, कि एक विश्व-व्यापी कारक (Universal Agent) समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक है—यह एक प्रकार का सजीव पदार्थ है, जिसे विश्व-शक्ति भी कह सकते हैं, और जिस से यह सारा

[४] डेन् रुड़यार् कृत 'व्यक्तित्व का ज्यौतिष'।

स्थल परिपूर्ण है। इस वात का आभास उत्तरोत्तर वढ़ता जा रहा है, कि "मनुष्य के चेतन 'अहं' (conscious ego) और प्रकृति में अवश्य थोड़ा वहुत सम्वन्ध है। किसी समय ये सम्वन्ध केवल शारीरिक और तात्विक (elemental) ही समझे जाते थे। अव वे मनो-वैज्ञानिक (psychological) और मानसिक (mental) समझे जाते हैं। और ज्यौतिष-शास्त्र व्यवस्था के इस नियम में समस्तता और सम्वद्धता (correlation) लाता है।"

विज्ञान की चरम सीमाएँ

विज्ञान को यह अनुभव होने लग गया है कि[५]

"हमारे सामने एक विश्व-व्यापी नियम है, कि संसार में सव कुछ पहिले से ही निश्चित है, इस 'पूर्व-निश्चयता' के नियम के सामने हमारी स्वतन्त्रताएँ वुद्धि का धोका मात्र हो कर रहजाती हैं। यह स्वतन्त्रताएं वैसी ही भ्रम मूलक हैं, जैसे हमारा 'डरना' अथवा 'क्रुद्ध होना'; हम समझते हैं कि हम अपनी इच्छा और यथार्थ कारणों के वश डरते अथवा क्रुद्ध होते हैं, किन्तु वास्तव में ये 'डर' अथवा 'क्रोध' के भाव उस समय भी यन्त्रों द्वारा देखे जा सकते हैं, जव सिर में से दुःख-सुख अनुभव करने वाली त्वचा (cerebral cortex) को अस्त्रों द्वारा शल्य-विधि से निकाल दिया जाय।"

---

[५] मई, १९४६ की "ज्यौतिप-पत्रिका" में ओ० वी० विजयमुनि लिखित 'ज्यौतिप और आधुनिक विज्ञान'।

कर्मवाद क्या है और इस का ज्यौतिष से क्या सम्बन्ध है, इन्हीं प्रश्नों के उत्तर से यह गुत्थी भी सुलझ सकती हैं, कि संसार में सब कुछ पहिले से ही निश्चित है, वा नहीं। आधुनिक विचारक इस विषय में और गहराई तक जा सकते थे, यदि उन्हों ने उन सिद्धान्तों की और ध्यान दिया होता, जो हिन्दुओं ने सहस्रों वर्ष पूर्व घोषित किए थे। किसी घटना के विषय में घटने से पहिले ही सूचना देदेना तभी सम्भव हो सकता है, जब यह मान लिया जाय, कि प्रकृति की गतिविधि किसी न किसी रूप में पहिले से निश्चित है। **लाप्लास्** (Laplace) के कथनानुसार, प्रकृति का यह एक नियम है, कि "एक-से कारणों का प्रभाव भी एक-सा होता है।" इस का अर्थ यह हुआ, कि किसी न किसी प्रकार की 'पूर्व-निश्चयता' प्रकृति में अवश्य विद्यमान है, और इसी से प्रकृति के अन्दर एकरूपता (uniformity) का होना ध्वनित होता है। **हाल्डेन्** (Haldane) इस विषय में **लाप्लास्** (Laplace) की कड़ी आलोचना करते हैं, किन्तु इस बात में उन्हों ने भी सन्देह नहीं किया, कि भौतिक और सामाजिक घटनाओं को उन के घटने से पहिले ही अतीव सम्यक्तया जान लेना सम्भव है।" **बर्ट्रेण्ड् रस्सल्** (Bertrand Russel) यह स्वीकार करते हैं, कि[६] "एक सम्बन्ध, जो अनेक स्थानों पर सच्चा सिद्ध हुआ है, और कभी झूठा नहीं निकला, उस के विषय में जो सम्भावना अधिक से अधिकमात्रा में स्थिर की जा सकती है, वह यही है, कि वह सदैव सत्य है।" ज्यौतिष के विद्यार्थियों के लिए यह परिभाषा बहुत

---

[६] भौतिक-पदार्थ का विश्लेषण।

महत्व की है। उपर्युक्त कथनों के आधार पर हम 'पूर्व-विहितता' के सिद्धान्त को मानने पर स्वयं ही विवश हो जाते हैं। यदि कारण-कार्य (cause and effect) का कोई नियम ही न हो, तो जिस अंश तक रस्सल् भविष्य का जान लेना सम्भव मानते हैं, उतना भी सम्भव न हो। प्लङ्क् (Planck) ने तो सच्चे हृदय से स्वीकार किया है, कि "प्रकृति की वह बातें भी, जो जानी जा सकती हैं, हम विज्ञान की किसी शाखा द्वारा पूर्णतया खोज नहीं सकते।" और आगे फिर कहा है, कि "इस का अभिप्राय यह हुआ, कि **विज्ञान को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उन्हें पूर्णतया और विस्तारपूर्वक सुलझाने में वह कदाचित् समर्थ नहीं हो सकता। प्रोफ़ैस्सर्** आइन्-ष्टाइन् ने, सुनते हैं, यह कहा था, कि "सच मुच जब लोग मनुष्य की सोचने और संकल्प करने की स्वतन्त्रता के विषय में बातें करते हैं, तो मैं यह समझ नहीं पाता कि उन का तात्पर्य क्या होता है।" शोपन्हावर् ने कहा है कि "मनुष्य की जो इच्छा हो, वैसे वह कर सकता है, पर जैसी इच्छा वह अपने मन में लाना चाहे, वैसी ला नहीं सकता।" अर्थात् इच्छानुरूप काम तो कर सकता है, पर इच्छा कैसी उत्पन्न हो, यह उस के बस की बात नहीं।

ऊर्जाणु-वाद

यह प्राय समझा जाता है कि प्लङ्क् के ऊर्जाणु-वाद (quantum theory) ने 'पूर्व-निश्चयता' अथवा कारण-कार्य के सिद्धान्त को हिला दिया है। भौतिक-वादियों का विश्वास है, कि आकस्मिकता (chance) और आवश्यकता

(necessity), ये दोनों ही सब प्राकृतिक आविर्भूतियों को स्पष्ट कर देने के लिए पर्याप्त हैं। एक साधारण बुद्धि के व्यक्ति को भी इतनी सूझ है, कि प्रकृति में अन्ध-आकस्मिकता (blind chance) का कोई अर्थ नहीं; क्यों कि यह किसी भी प्राकृतिक आविर्भूति का यथायोग्य स्पष्टीकरण नहीं कर सकती। हम इस प्रश्न को और बढ़ाना नहीं चाहते, क्यों कि यह तर्क शास्त्र (dialectics) का विषय है और इसे समझने के लिए बहुत गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। केवल इतना बता देना पर्याप्त होगा, कि ठण्डे हृदय से विचार करने पर पता चलता है, कि समग्र ब्रह्माण्ड में एक प्रबुद्ध शक्ति, जिस में रूप रेखा निर्धारित करने का सामर्थ्य है, सर्वत्र काम कर रही है। इस महान् तथ्य को ऋषियों ने दिव्य-ज्योतिः, स्वज्ञा अथवा अन्तर्ध्यान द्वारा अनुभव किया था। यह विधि कार्य-सिद्धि की दृष्टि से उतनी ही विश्वसनीय है, जितनी वैज्ञानिक विधि, पर एक आधुनिक वैज्ञानिक के लिए इस को अधिगत करना कोई सुगम कार्य नहीं है।

पूर्व-निश्चयता के सिद्धान्त को एक और धक्का रुदर्फ़ोर्ड (Rutherford) के इस आविष्कार से लगा माना जाता है कि[७] "परमाणु कभी तो एक साथ फट जाते हैं, और कभी उन का आचरण इस से भिन्न होता है।" बोर् ने पता लगाया था कि[८] "परमाणु के अन्दर विद्युत् कण एक-सार गति से

[७] दास गुप्त लिखित "भौतिकवाद, मार्क्सवाद, पूर्वनिश्चयवाद और तर्क"।

[८] तत्रैव।

धारा की भान्ति लगा तार नहीं बहते, वरन् कूद-कूद कर—फलांग कर—आगे बढ़ते हैं।" इन आविष्कारों की कारण-कार्य के सिद्धान्त पर बहुत गहरी छाप लगी, क्यों कि इन्हों ने यह दिखला दिया कि[9] "प्रकृति में एक-सारता अथवा एक-रूपता (uniformity) का कोई नियम नहीं है।" इस के पश्चात् **हाइसन्-बर्ग** का नवीन ऊर्जाणु यन्त्र-विज्ञान (New Quantum Mechanics) आया, जिस के अनुसार[10] "यद्यपि चलने की क्रिया में एकाकी रुकना और फिर छलांग मार कर आगे बढ़ना पाया जाता है, तो भी यह रुकना और चलना इतना संक्षिप्त होता है, कि कार्य-रूप में इस का प्रभाव एक सार गति ही हो जाता है।" दूसरे शब्दों में, संस्कृत की इस कहावत के अनुसार, कि 'धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' (धाता ने पूर्ववत् ही कल्पना की), **प्लङ्क्**, **आइन्-ष्टाइन्** और **हाइसन्-बर्ग** की खोजों के उपरान्त विज्ञान के मन्तव्य उन्हीं प्राचीन सिद्धान्तों की ओर लौट रहे हैं, जहां से वे चले थे। **ऍडिङ्टन्** हमें कितने सुन्दर ढंग से इस विषय में चेतावनी देते हैं:

> "इस सूर्य भगवान् के तले कोई भी वस्तु नई नहीं है। और हम ने जो यह नई उलट-बाज़ी खाई है, उसने हमें मुड़ कर न्यूटन् का प्रकाश के विषय में जो मत था, लग भग वहीं ला खड़ा किया है। हमारा नवीन मत कण-वाद (corpuscular theory) और तरंगवाद (wave theory)

---

[9] तत्रैव।

[10] तत्रैव।

का विचित्र सा मिश्रण है। न्यूटन् की ओर इस प्रकार लौट आने में सम्भवतः एक प्रसन्नता की भावना भरी है।"

यह स्पष्ट दिखाई देगा, कि पूर्व-निश्चयवाद पर जो कड़ी चोटें समझी जाती हैं, वह परमाणुओं और विद्युत्-कणों के क्षेत्र तक ही सीमित हैं। यदि हम एक मनुष्य को लें, तो पता लगता है, कि किसी न किसी प्रकार की पूर्व-निश्चयता, अर्थात् पहले से ही भाग्य का निश्चित होना, अवश्य सिद्ध होता है। वे घटनाएँ भी, जिन्हें निश्चित नहीं कहा जा सकता, परिसंख्यान-विद्या (statistics) के नियमों के अन्तर्गत आ जाती हैं। "ऐसे नियम ढूंडे जा सकते हैं, जिन के अनुसार विद्युत्-कणों के समूह आचरण करते हैं।" जहां तक मनुष्य का सम्वन्ध है, उस के भूत काल और वर्तमान से भविष्यत् का पता चल सकता है, यदि ठीक-ठीक नहीं तो चलिए थोडा वहुत ही सही। हमें वैज्ञानिकों के इस क्रन्दन और कोलाहल से प्रभावित नहीं होना चाहिए, कि 'विधि-वाद' अथवा 'पूर्व-निश्चयता-वाद' असफल सिद्ध हो चुका है। क्यों कि इस का संकेत परमाणुओं के जगत् की ओर ही है। कुछ मौलिक वस्तुएँ अव भी मनुष्य की समझ से परे विद्यमान हैं।

हम अन्यत्र कह आए हैं कि प्राचीन महर्षियों ने मन की गम्भीर एकाग्रता द्वारा वे वे महान् तथ्य खोज निकाले थे, कि **आइन्-ष्टाइन्** और **एडिङ्टन्** अभी उन के वाहरी स्तर को ही छू पाए हैं। मन की एकाग्रता से पहले, पूर्ण अनासक्ति की आवश्यकता है। ऐसी अनासक्ति के विना अज्ञात-क्षेत्र की

'खोज' असम्भव है। क्या आधुनिक वैज्ञानिक के पास अनासवित का यह गुण है? **हाइसन्-वर्ग** ने सिद्ध किया है, कि "अन्वेषक के अपने स्वभाव के कारण खोज सर्वथा विशुद्ध नहीं रहती और इस दोष से कभी छुटकारा नहीं मिल सकता"। जब तक कोई वैज्ञानिक 'शुद्ध मन और शुद्ध विचारों से' खोज करने के योग्य नहीं हो पाता, तब तक उस के निष्कर्ष, विद्युत्-कणों के विषय में चाहे वे कितने भी सत्य क्यों न हों, सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों में कदापि सत्य नहीं माने जा सकते। यह चमत्कार तो व्यास, कणाद, और कपिल आदिक महर्षियों के ही वस का था कि 'विशुद्ध-विचारों द्वारा अदृश्य और अमूर्त विषयों के रहस्य-मय क्षेत्रों तक उड़ान करके, उन्होंने एक महान् और मौलिक सत्य को खोज निकाला।

[११] "उन के अन्दर एक ऐसा असाधारण साधक वल था, कि चिन्तन करते समय वे विचारों को आत्मरूप कर लेते थे।" महर्षियों द्वारा प्राप्त तथ्य ही प्रमाणित माने जा सकते हैं, यह वात **हाइसन्-वर्ग** जैसे धुरन्धर वैज्ञानिक के कथन से प्रतिध्वनित होती है, जब वे कहते हैं कि "वहुत सी अमूर्त (abstract) वातें, जो आधुनिक सैद्धान्तिक-भौतिक-विज्ञान की विशेषताएं समझी जाती हैं, हमें अतीत काल के दार्शनिक ग्रन्थों में विवर्णित मिलती हैं। उस समय के वैज्ञानिकों ने तव यह समझ कर, कि ये केवल मानसिक व्यायाम मात्र हैं, उन अमूर्त तथ्यों को उपेक्षित कर दिया होगा, क्यों कि उन

---

[११] दास गुप्त लिखित "भौतिकवाद, मार्क्सवाद, पूर्वनिश्चयवाद और तर्क"।

का ध्यान उस समय ठोस वास्तविकता की ओर लगा हुआ था। किन्तु आज प्रयोग करने की कला में अधिक सूक्ष्मता आ जाने के कारण हम उन पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने पर वाधित हैं।"

भौतिक-विज्ञान और दर्शन-शास्त्र

हाइसन्-बर्ग द्वारा ऐसे निर्भीक कथन के होते हुए यह विचित्र प्रतीत होता है, कि आज का वैज्ञानिक उपनिषदों और आचार्यों की आध्यात्मिक परिकल्पनाओं को अभी एक दूषित वस्तु समझे। जैसा कि **डॉक्टर् राइन्** ने कहा है ;

> [१२] "मनुष्य की अन्तिम प्रकृति के सम्बन्ध में भान्ति भान्ति के मन्तव्यों पर विचार-विनिमय करना विद्यालयों के भीतर और वाहर निषिद्ध-सा है, जो कि दुर्भाग्य की वात है।"

वैज्ञानिक अन्वेषण का प्रगति के पथ पर एक एक पग, प्रकृति के एक एक नवीन नियम की खोज—वह रसायन शास्त्र के क्षेत्र में हो, अथवा जीव शास्त्र के—सब का आशय पूर्व-निश्चय-वाद के सिद्धान्तों का प्रसार ही है। इस का अभिप्राय यही हुआ कि एक न एक प्रकार का कारण-कार्य, अथवा हेतु-हेतुमत्, का नियम सर्वत्र लागू है। **वर्ट्रॅण्ड् रस्सल्** यों कहते हैं :

> [१३] "कारण-कार्य के सूत्र में वँधी हुई घटनाओं से मेरा अभिप्राय ऐसी घटनाओं से है, जिन में से कुछ एक

---

[१२] मन की पहुँच।

[१३] मनुष्य का ज्ञान, उस का विस्तार-क्षेत्र तथा अन्तिम-सीमाएँ।

का ज्ञान हो, तो, बाहरी वातावरण के विषय में बिना कुछ जाने भी, हम अन्यों के विषय में किंचिद् जानकारी प्राप्त कर सकें।"

दूसरे शब्दों में, भविष्यत् को जान सकने की सम्भावना को स्वीकार कर लिया गया है। मैं अपने पाठकों को सतर्क किए देता हूं, कि मैं ने 'भाग्य' शब्द का प्रयोग ज़ान बूझ कर नहीं किया, यद्यपि 'भाग्य' और 'पूर्व-निश्चयता' दोनों शब्द लग भग एक ही भाव को प्रकट करते हैं। आगे चलकर मैं 'भाग्य' और 'स्वच्छन्द-संकल्प' (Fate and Free Will) के प्रश्न पर विचार करूँगा तथा ज्यौतिष के साथ इन का क्या सम्बन्ध है, यह भी दर्शाऊँगा।

ज्यौतिष के अधःपतन का एक कारण तो यह प्रतीत होता है, कि वैज्ञानिकों की बुद्धि केवल मात्र एक चीर-फ़ाड़ और विश्लेषण करने का यन्त्र बन कर रह गई। मनुष्य परम स्वार्थी हो गया है, और इन्द्रिय-लोलुपता, मानसिक-उच्छृङ्खलता और बुद्धि-भ्रंश उस के अन्दर जड़ पकड़ गए हैं।

[१४] "संसार कि बहुसंख्यक पदार्थों में एक प्रकार की व्यवस्था प्रदर्शित करने वाले नियम के रूप में भी ज्यौतिष की महत्ता तथा आवश्यकता लुप्त-प्राय हो गई (और इसे मानना अनावश्यक होगया), क्यों कि बौद्धिक तर्कवाद के बढ़ते हुए दबाव ने मनुष्य को इतनी क्षमता प्रदान कर दी कि उसे समस्त ब्रह्माण्ड के अन्दर अपने ही ढंग की व्यवस्था का अस्तित्व दिखाई देने लगा।"

---

[१४] डेन् रुड्यार् कृत 'व्यक्तित्व का ज्यौतिष'।

जीवशास्त्र की 'व्यवस्था' वस्तुतः भिन्न प्रकार की होती है। बुद्धि, जो मनुष्य के चैतन्य (consciousness) को उन्नत करने का एक सहायक साधन मात्र है, [१५] "एक प्रकार की अलग-थलग रहने की भावना, अथवा व्यष्टिता (individualism), उत्पन्न कर देता है, जिस का आधार विश्लेषण होता है। .... ज्यों ज्यों अलग-अलग व्यक्ति अधिकाधिक महत्वपूर्ण होते गए है," त्यों त्यों ज्यौतिपशास्त्र नीचे गिरते गिरते भाग्य-निरूपण (fortune-telling) के से निम्न स्तर को पहुंचता गया। ज्यौतिष के सूक्ष्म अंगों का पुनर्जन्म उसी समय हुआ, जब स्वर्गीय **प्रो० वी० सूर्य-नारायण राव** ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया, एवं इस कार्य को हाथ में लिया।

वैज्ञानिक विचारों की प्रवृत्ति में इस समय एक अत्यन्त भ्रमात्मक स्थिति उपस्थित है। इस लिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं, कि मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाली सब घटनाओं में एक प्रकार की निश्चयता (determinism) अवश्य है, और परमाणुओं के जगत् में "एक प्रकार की 'सांख्यिक-निश्चयता' (statistical determinism) विद्यमान है।"

संकालीनता का नियम

कारण-कार्यवाद और यन्त्रवाद भौतिक घटनाओं के समझने में बड़े उपयोगी और मूल्यवान् सहायक सिद्ध हुए हैं, परन्तु मनोवैज्ञानिक घटनाओं को स्पष्ट करने में उन्हों ने कोई

---

[१५] तत्रैव।

हाथ नही वटाया। क्यों कि ज्यौतिष का, मनुष्य की मनोवैज्ञानिक प्रावस्थाओं से भी उतना ही सम्वन्ध है, जितना भौतिक प्रावस्थाओं से, इस लिए काल की आमूल्यता value of time) के विषय में दो एक शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। क्यों कि कारण-कार्य का नियम कई एक मनोवैज्ञानिक घटनाओं के स्पष्टीकरण में असमर्थ रहा, अतः प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक युङ्ग ने यह पता लगाया, कि

> [१६] "मानसिक विकारों में कई वातें ऐसी समरूप और मिलती जुलती पाई गई हैं, कि उन का पारस्पारिक सम्वन्ध केवल आकस्मिक (casual) नही हो सकता; वे अवश्य एक दूसरे के साथ किसी अन्य घटना-चक्र द्वारा सम्वद्ध होंगी"

युङ्ग आगे चल कर पुनः कहते हैं:

> [१७] "यह सम्वन्ध कहां मिलता है? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि यह सम्वन्ध तत्व-रूप में 'सापेक्ष-समकालिकता' (relative simultaneity) में मिलता है। इसी से तो 'संकालीन' (synchronistic) शव्द वना है।"

युङ्ग के मतानुसार, "काल में ये गुण हैं, अथवा यों समझिए, कि इस में यह मौलिक विशेषताएं हैं, कि एक-जैसी स्थितियां एक ही साथ कई स्थानों पर प्रकट हो जाती हैं, और

---

[१६] स्वर्ण-पुष्प का रहस्य।

[१७] तत्रैव।

ऐसे ढ़ंग से प्रकट होती हैं, कि उन का निराकरण (explanation) यह कह देने मात्र से नहीं हो सकता कि उन में सादृश्य अकस्मात् आ गया है। उदाहरणार्थ, कई बार एक साथ एक ही प्रकार के विचार जाग उठते हैं, एक ही प्रकार के चिह्न प्रकट हो उठते हैं, और एक ही जैसी मानसिक अवस्थाएं उत्पन्न हो जाती हैं।"

मेरे नाम एक निजी पत्र में (जिस का पूर्ण पाठ परिशिष्ट में दिया गया है), **डॉक्टर् युङ** ने ज्यौतिष की सत्यता को स्वीकार किया है। जहां तक ज्यौतिष के मूलाधार का सम्बन्ध है, उन्हों ने ठीक ठीक निरूपण नहीं किया, क्यों कि वे समझते हैं, कि ज्यौतिष की ठीक भविष्य-वाणियां "राशियों के प्रभाव के कारण नहीं, प्रत्युत हमारे कपोल-कल्पित समय के मापने के ढंग पर निर्भर हैं"।

यह स्पष्ट है, कि भविष्य-वाणियों के विषय में **कार्ल युङ** को सम्भवतः हिन्दु दृष्टि-कोण का कुछ भी ज्ञान नहीं। भविष्य वस्तुतः भूत का प्रतिविम्ब ही है। जन्मपत्र केवल भविष्य की सूचना देता है। किन्तु जिसे हम किसी ग्रह, अथवा नक्षत्र, का प्रभाव कहते हैं, वह एक निकटवर्ती कारण मात्र है। हम युङ के विचारों के साथ पूर्णतया सहमत नहीं हैं; वे वहां तक ही मानने योग्य हैं, जहां तक वे ज्यौतिष का समर्थन करते हैं, और इसी उद्देश्य से उद्धृत किए गए हैं। क्यों कि 'संकालीनता का नियम' (synchronistic principle) समय की आमूल्यता (time evaluation) को प्रकट करता है, और "क्षण विशेष की निर्माण-कारी वलिष्टता (Formative

potency of the moment) पर आश्रित है," इस लिए यह, पूर्णतया नहीं तो वहुलांश में, ज्यौतिष के सिद्धान्तों से मिलता जुलता है। ग्रह भौतिक-द्रव्य के रूपान्तर ही हैं, और अन्तरिक्ष में, घूम रहे हैं। उन की गतियां समय के अनुसार नियन्त्रित हैं। इस लिए ज्यौतिप काल, देश और द्रव्य, इन तीनों को सम्वद्ध करता है, और 'संकालीनता' एवं 'कारण-कार्य' अथवा 'निश्चयता' के नियमों को प्रदर्शित करता है। यह जीवन का गूढ़ अर्थ समझने की कला है; और यह हमें एक ऐसा साधन प्रदान करता है, जिस से हम आत्मोन्नति और पूर्णता को प्राप्त कर सकें।

परमाणुओं के संसार में जहां निश्चितता है, वहां उतनी ही अनिश्चितता भी है। इस से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं, कि जहां एक ओर कर्मों का फल है, जो अनिवार्य और अटल है, वहां दूसरी ओर स्वच्छन्द-वुद्धि अथवा इच्छानुसार कर्म करने की स्वतन्त्रता, भी है।

द्वितीय प्रकरण

ज्यौतिष और कर्म

यही वे तथ्य थे, जिन के आधार पर महर्षियों ने कर्म और पुनर्जन्म के महान् सिद्धान्त को स्थापित किया। यदि पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार न किया जाय, तो न मनुष्य के भाग्य के विषय में शंकाओं का निवारण सम्भव है, और न ही इस बात का उत्तर मिल पाता है, कि प्रत्यक्षत: एक सी लगन, उत्साह और प्रयत्न की मात्रा के उपरान्त भी परिणाम में भेद और न्यूनाधिकता क्यों रहती है। यह असमता किसी अंश तक आर्थिक साधनों (economic factors) और वातावरण की स्थिति पर आश्रित कही जा सकती है। जहां हम किसी बात को तर्क से सिद्ध नहीं कर पाते, वहां झट 'आकस्मिकता' अथवा दैवयोग का नाम घुसेड़ देते हैं, जो हमारे अज्ञान को छिपाने का एक सरल-सा ढंग बन गया है। जहां कारण-कार्य के नियम का, अथवा पूर्व-निश्चयता के सिद्धान्त का अभाव हो, वहां अज्ञात घटनाओं का स्पष्टीकरण इस उत्तर के अतिरिक्त और किस प्रकार हो सकता है, कि ये आकस्मिक और दैवयौगिक हैं? एक ऐसी समस्या, जिस के समझने में गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता हो, उसे 'दुर्घटना' कह कर समाप्त नहीं कर देना चाहिए। इस के विपरीत, असमताओं भेदों तथा पारस्पारिक विलक्षणताओं ने ही तो ऋषियों को कर्मवाद की यथार्थता मानने पर विवश कर दिया था। भौतिक

आविर्भूतियों (physical phenomena) में कारण-कार्य का सम्बन्ध सुगमता से दर्शाया जा सकता है, किन्तु कर्म-वाद में किसी कर्म के फल, अथवा क्रिया के प्रभाव का भौतिक विश्लेपण नहीं किया जा सकता। यह तो एक मन्तव्य है, और वस्तुतः एक महान् मन्तव्य, जिस का आधार अकाट्य तर्क है। कर्म का नियम एक के पश्चात् दूसरे, दूसरे के पश्चात् तीसरे, एवं इसी प्रकार अनेकों जन्मों तक चलता रहता है। मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है, जब तक कि वह सत्य विद्या और बुद्धि द्वारा अपने कर्मों का नियन्त्रण करने में सफल नहीं हो जाता। हिन्दुओं के विचार में,[१८] "यह कर्मवाद और स्वतन्त्र-चिकीर्पा (free will) केवल मात्र मेधावी चिन्तन-शक्ति की उपज, अथवा मिथ्या आश्वासन नहीं है।" ये साक्षात् दर्शाए हुए तथ्य हैं—दर्शाए हुए इन अर्थों में, कि ऋपियों ने ध्यानावस्थित दशा में उन की सत्यता को अनुभव किया था। एक समीक्षक मनस्वी यह देख सकता है, कि एक विशुद्ध विचार (महर्पियों के यौगिक अन्तर्वीक्षण) में और प्रयोगशाला के अन्वेपण में बहुत आश्चर्य-जनक सादृश्य है। उत्तरोक्त ने सिद्ध कर दिया है, कि परमाणु-जगत् में 'पूर्व-निश्चयता' और 'अनिश्चयता' विद्यमान है, और महर्पियों ने यह दिखाया है कि "एक वार कर्म करके मनुष्य उस का अनिवार्य फल अवश्य पाएगा"। अपि च, "कर्म करने अथवा न करने में प्राणी अपनी स्वतन्त्र-इच्छा का प्रयोग

---

[१८] दास गुप्त लिखित "भौतिकवाद, मार्क्सवाद, पूर्वनिश्चयवाद और तर्क"।

कर सकता है, किन्तु जब एक कर्म कर डाला जाय तो कर्मवाद के अनुसार उस का फल अवश्य प्राप्त करेगा। कर्म के अनिवार्य फल से बच निकलने का कोई मार्ग नहीं है। किन्तु अपनी स्वतन्त्र-बुद्धि के अभ्यास द्वारा मनुष्य अपना भविष्य बना सकता है, और इस प्रकार अपने भाग्य का सृजन कर सकता है"। फलित-ज्यौतिष अथवा **होरा-शास्त्र** हमारे पूर्व कर्मों का फल व्यक्त करता है, और सम्भवतः उसी का वर्णन उस परिभाषा में किया जाती है, जिसे हम 'ग्रहों का प्रभाव' कहते हैं।

अत एव ज्यौतिष और कर्म एक दूसरे के साथ संबद्ध हैं। ज्यौतिष हमारे उन कर्मों का फल प्रदर्शित करता है, जो हमें इस जीवन में स्मरण नहीं और इस जन्म में जिन का कुछ पता नहीं मिलता। हमारे अज्ञात कर्मों के फल को ही 'भाग्य' अथवा 'अदृष्ट' कहते हैं। इस प्रकार कर्मवाद कारण और कार्य का सम्बन्ध सूचित करता है।

फलित-ज्यौतिष की महत्ता पर विचार करने से पूर्व हम कर्म के सिद्धान्त के विषय में कुछ एक बातें और कहना चाहते हैं। बहुत से लोग यह समझते हैं, कि कर्म का सिद्धान्त अनिवार्य भाग्यवाद और पूर्वविहित आवश्यकता (fatalism and predestined necessity) पर आश्रित है, और इसी कारण यह व्यक्तिगत विकास के लिए कोई अवसर नहीं रहने देता। यह मिथ्या धारणा कुछ अंशों में कर्मवाद से अनभिज्ञता पर आश्रित है। यह मानना ही पडेगा, कि यह संसार या तो नियम-बद्ध सृष्टि है, या उच्छृङ्खल घपला है। यह नहीं हो सकता, कि इस का संचालन कुछ तो नियमपूर्वक हो, और कुछ आकस्मिक

और नियमरहित विधि से। विचारवान् लोगों की अनेकों पीढ़ियों के अनुभव को ध्यान में रखते हुए एक बुद्धिमान् पुरुष को इस वात का समाधान हो जाना चाहिए, कि संसार और जीवन क्रियाएँ विशेष नियमों के नियन्त्रण में हैं। यदि सूर्य और ग्रह-पिण्ड अनुशासन के अधीन हैं, और उन की गति तथा अन्य आविर्भूतियों में व्यवस्था (order) है, तो जो जीव ग्रहों पर वसते हैं, उन के जीवन का निर्देश भी सुनिश्चित नियमों और उपनियमों के अनुसार ही होता होगा और केवल दैवयोग से—जीवन की एक आकस्मिक घटना के कारण—एक व्यक्ति राजा और दूसरा रंक नहीं वन सकता।

आत्मा का अमरत्व

"कर्मों का अध्ययन करने के लिए सव से अच्छा ढंग तो यह है, कि विषय को उसी स्तर पर रखा जाय, जहां प्रत्येक मनुष्य की 'आत्मा' का पृथक् व्यक्तित्व माना गया हो।" आत्मा को अमर कहा गया है। केवल 'धनवादी' (positivists) कहलाने वाले और उन से मिलते जुलते कुछ अन्य मतों के अनुयायी ही जीवात्मा के अमर होने में सन्देह करते हैं। मरने के पश्चात् चेतन-अस्तित्व को सिद्ध करना भी उतना ही कठिन है, जितना जन्म से पूर्व के अस्तित्व को सिद्ध करना। यह एक प्राचीन कथन है, कि जो किसी समय आरम्भ हुआ है, उस का किसी समय अन्त भी होगा। हमें यह कहने का कोई अधिकार नहीं, कि इस भूलोक पर जीवात्मा का अस्तित्व एक दिशा में तो अनन्त है, पर दूसरी दिशा में ऐसा नहीं। इस से अधिक युक्ति युक्त विचार तो कुछ वैज्ञानिकों का ही है, जो यह

मानते हुए, कि आत्मा की उत्पत्ति इसी जन्म के साथ होती है, यह भी साथ ही घोषित कर देते हैं, कि इस का अन्त भी जीवन के साथ ही हो जाता है। उन के मौलिक मन्तव्यों का यह तर्क-संगत निष्कर्ष है। यदि आत्मो अस्तित्व में आई ही जीवन के लिए है, तो इस के पश्चात् वह क्यों रहे? युक्तियों के आधार पर यह वात, कि मृत्यु का अर्थ आत्मा का अन्त है, उतनी ही सम्भावनीय है, जितना यह समझना, कि जन्म के साथ उस का प्रारम्भ हुआ। यही युक्ति यवन (Greek) चिन्तकों के समीप वहुत महत्व रखती थी, जिन के अमरत्व (immortality) सम्वन्धी तर्क-वितर्क ने पीछे आने वाली यूरोप की सन्तानों का पथ-प्रदर्शन किया। उन्हों ने आत्मा के नित्य होने की घोषणा इस लिए की, कि उस का अमरत्व सिद्ध किया जा सके। निस्सन्देह, हिन्दुओं का मन्तव्य वहुत अधिक व्यापक है। प्रथम विकासवादी कपिल मुनि के एक शिष्य कहते हैं, कि मनुष्य का अस्तित्व उस के पूर्व-जन्मों की पुनरावृत्ति ही है। उस का वर्तमान जन्म अनादि काल से चली आ रही जन्मों की शृङ्खला में एक कड़ी है, जो भूत काल को भविष्यत् के साथ संयोजित करती है। प्रत्येक जन्म में मनुष्य अपने जीवन-ध्येय की पूर्ति की ओर एक एक पग अग्रसर होता जाता है, और अन्ततः उस पद को प्राप्त हो जाता है, जिस में भूत, वर्तमान और भविष्यत् एक दूसरे में लीन हो जाते हैं, और काल तथा देश मिट जाते हैं। इन सव वातों के अतिरिक्त, अमर पद में हमारी सहजात आस्था होना भी इस दृष्टिकोण को अज्ञातरूप में स्वीकार कर लेने का द्योतक है। यदि हम आत्मा का अमरत्व स्वीकार न करें, तो

स्पष्ट ही है, कि न तो नाश होना समझ में आवेगा और न शून्य में से सृष्टि का उत्पन्न होना; अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति तथा नाश के विषय में तभी एक सार्थक वात वनती है, जव आत्मा को अमर माना जाय। मनुष्य की 'आत्मा', 'स्पिरिट्' अथवा 'अहम्'—जो भी चाहें, आप कहलें—उसे यदि नित्य मान लिया जाय, तो कर्म का सिद्धान्त ही एक मात्र ऐसा सिद्धान्त है, जो जीवन की आविर्भूति (phenomenon of life) का तार्किक अथवा दार्शनिक (metaphysical), स्पष्टीकरण कर सकता है। भौतिक स्तर पर यह पहले ही 'विकासवाद' (evolution) के रूप में स्वीकार किया जा चुका है, और मानव अनुभव के ऊपर न्याय (justice) का नियम लाभू करने में यह सुदृढ़ आचारात्मक आमूल्यता (ethical value) रखता है।

कर्म का सिद्धान्त यह ध्वनित करता है कि हमारी क्रियाएँ —भौतिक भी और मानसिक भी—विशेष नियमों के अनुसार एक सुनिश्चित लक्ष्य को दृष्टि में रख कर की जाती हैं। कृत कर्म अपना फल चाहे एक क्षण में दें, अथवा एक दिन में, अथवा एक वर्ष में, और चाहे एक जीवन में, वा अनेकों जन्मों में। कर्म, एक वार किए जा चुकने के पश्चात्, एक प्रकार की अदृश्य अवस्था में रहते हैं, जव तक कि उन के फलीभूत होने का समय नहीं आता। और इस अवधि में, 'जो कुछ' रहता है, उसे 'अदृष्ट' (तथोक्त भाग्य अथवा विधि) कहते हैं। इन कर्मो (इच्छाओं और विचारों) का फल भोगे विना गति नहीं और उस समय तक छुटकारा नहीं मिल सकता, जव तक अदृष्ट समाप्त नहीं हो जाते।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, हमारे सब कार्यों के साथ, सुख-दुःख का आभास होता है, और हमें कुछ भाता है, कुछ नहीं भाता, कोई पदार्थ अच्छा लगाता है, कोई बुरा—यह विविध आभास सदैव हमारे साथ लगे रहते हैं। इस बात से नकार नहीं किया जा सकता। प्राचीन लेखकों का कहना है, कि ये आभास बाह्य पदार्थों से सम्बद्ध नहीं किये जा सकते। क्यों कि एक बाह्य पदार्थ, अथवा वस्तु, जो एक विशेष समय पर मनुष्य को सुख देती है, वही दूसरे समय उसे दुःख पहुँचाती है; वह सदैव उसे सुख ही का संचार नहीं करती। अतः सुख-दुःख का (भौतिक, न तु निमित्त) कारण 'आत्मा' होना चाहिए, जो कि इन आभासों का स्थान है। पर आत्मा नित्य है, यह भी सुख-दुःख आदि का मूल कारण नहीं हो सकता; क्यों कि यदि यही अभि-लषित कारण होता, तो उस का प्रभाव सदैव विद्यमान रहना चाहिए; पर ऐसी बात भी नहीं है। अतः आत्मा के साथ एक निर्धारक कारक (determining factor) का विद्यमान होना आवश्यक है। प्राचीन हिन्दु दार्शनिक एक अदृश्य शक्ति के अस्तित्व में विश्वास रखते थे, जिसे '**धर्म-धर्म**', 'अदृष्ट' अथवा 'कर्म-संचय' कहा जाता था। यही अदृश्य शक्ति अतीत के कर्मों का फल प्रदान करने में सहायक होती है।

विकास-वाद की त्रुटियाँ

प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार, जब एक व्यक्ति मर जाता है, तो उस की आत्मा, जो कि एक सूक्ष्म शरीर में आलिप्त होती है, और जिस के ऊपर उस के समस्त अच्छे और बुरे कर्मों

का संचय लदा होता है, कुछ समय के पश्चात् एक दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है। वह ठीक वैसे ही अपने स्थूल शरीर को छोड़ जाती है, जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को छोड़ कर नए धारण कर लेता है। उस का पुनर्जन्म पूर्व जीवन में किए हुए कर्मों के अनुसार एक भौतिक देह में होता है। यह जन्म और मरण का चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक कि वह व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त नहीं हो जाता। कर्म का आधारभूत सिद्धान्त इसी लिए कारण-कार्य का नियम है, जो ठीक इस कहावत पर पूरा उतरता है, कि 'जैसा कोई बोएगा, वैसा हीं काट लेगा'। आधुनिक विकासवाद में यह त्रुटि है, कि यह उन समस्याओं का कोई सन्तुष्टिजनक समाधान नहीं बताता, जो आदि काल से मानव-हृदय को विक्षुब्ध करती रही हैं। आधुनिक विकास-वाद तो मनुष्य तक ही समाप्त हो जाती है। दूसरी ओर कर्मवाद हमें और आगे लेजाता है, और बताता है कि "क्रिया और प्रति-क्रिया परस्पर समान और विरोधी होती हैं"। इस कथनानुसार, जब जब विकास होगा, तब तब साथ ही साथ अपकाश (devolution) भी अवश्य होगा। अतः इस जन्म में जो ब्राह्मण है, वह अगले जन्म में एक शूद्र के रूप में जन्म लेसकता है; इस जीवन में एक धनी पुरुष अगले जीवन में एक निर्धन के रूप में उत्पन्न हो सकता है, एवं **एतद् विपरीत भी**। सो जीवन में पदवी, अथवा धन की मात्रा, इत्यादि, जो एक व्यक्ति इस जन्म में प्राप्त करता है, वह अधिकांश पूर्व जन्म में संचित कर्मों के फल पर निर्भर होती हैं। जो कुछ हम करें, उस से हमारे कर्म बनते हैं, और जो हम करते हैं, वह हमारे विचारों पर आश्रित

है। अत एव मनुष्य स्वयं ही अपने कर्मों का निर्माता है, क्यों कि यह उस के विचारों की उपज है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात् (१) संचित; (२) प्रारब्ध; और (३) आगामी। पहली प्रकार के कर्म वे हैं, जो मनुष्य पिछले जन्म में कर चुका है; दूसरे वे, जो वह अब कर रहा है, और जिन में से कुछ तो पूर्व कर्मों का फल हैं, कुछ एक प्रकार की गुप्त अभ्यान्तरिक शक्ति के प्रभावाधीन हैं। और तीसरे वे, जिन्हें करने का विचार उस के मन में है।

[१९] "अपिच, ऐसा प्रतीत होगा, कि मनुष्य केवल उन्हीं कामों के लिए उत्तरदायी है, जिन का विचार उस के मन में उत्पन्न हुआ है। वह उन कामों के लिए उत्तरदायी नहीं, जिन में विचार, अथवा उद्देश्य, कर्म के संग-संग नहीं रहे। उदाहरणार्थ, किसी स्टेशन् के प्लेट्-फ़ार्म पर शीघ्रता से मुड़ते समय एक व्यक्ति अपने पीछे खड़े किसी दूसरे व्यक्ति से टकरा जाता है, जिस के फलस्वरूप उत्तरोक्त गाड़ी के सामने जा गिरता है; पूर्वोक्त उस की मृत्यु के लिए उत्तरदायी नहीं, क्यों कि उस की कदाचित् यह इच्छा नहीं थी। यहां ऐसा प्रतीत होगा, कि दण्ड-विधान (Law) उस वस्तु का "ऊर्ध्व भाग" है, जिस का आंगल दण्ड-विधान प्रतिविम्वित "अधो भाग" है, यद्यपि यह अज्ञातरूप से प्रतिविम्वित हुआ है। कारण यह, कि आंगल दण्ड-विधानानुसार, किसी काम का उत्तरदायित्व आरोपण करने के लिए न केवल 'दुष्कर्म' (दण्डनीय कार्य) होना आवश्यक है, प्रत्युत 'दुर्भावना' (दूषित मन) की भी

---

[१९] क्रिश्चियन् हम्फ्रेज् कृत 'कर्म और पुनर्जन्म'।

आवश्यकता है।" यह एक बहुत सामान्य-सी तुलना है। **प्रो० बी० सूर्यनारायण राव** का कथन है कि :–[२०] "जन्म से पूर्व, जातक के कुछ अपने कर्म होते हैं, जिन के फलस्वरूप वह विशेष प्रकार के वातावरण में, विशेष प्रकार की बाह्य रूप-रेखा और आकृति के साथ और विशिष्ट मनो-वृत्तियों सहित एक परिवार विशेष में जन्म लेता है। वे कर्म, जिन के फल-स्वरूप उसे जन्म तथा वातावरण मिला, **संचित** कहलाते हैं, अर्थात् इस जन्म से पूर्व जातक द्वारा अपने लेखे में संग्रह किए हुए। प्रारब्ध वह है, जो वह जन्म के पश्चात् करता है। यहां प्रकृति का एक अद्भुत रहस्य है, जिसे समझने के लिए बहुत गम्भीर और सबुद्धि अध्ययन की आवश्यकता है। बच्चे की कुछ क्रियाओं का कारण विशेष वस्तुओं के लिए उस की सहजात रुचि है, जो कि उस के पिछले कर्मों का फल है। किन्तु बच्चे की अपनी स्वतन्त्र इच्छा भी है। यह अंशिक रूप में पुराने कर्मों के फल के अधीन है, और अंशिक रूप में उन से स्वतन्त्र है; यथा नखों का रहस्य। नख प्रत्यक्षतः निर्जीव हैं, किन्तु उन में जीवन भी है, क्यों कि वे बढ़ते हैं। तथापि किसी प्रकार की पीड़ा दिए बिना ही उन्हें किसी अंश तक काटा, कुरेदा अथवा जलाया जा सकता है। सजीव पदार्थों में से निर्जीव पदार्थ क्यों कर उग सकता है, यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे वही उच्च व्यक्ति अवगत कर सकता है, जो प्रबुद्धता के उच्चतम स्तर को पहुंच चुका हो। जब कोई बच्चा अपने पूर्व कर्मों के वश कोई काम करे, उसे उस के संचित अथवा संगृहीत कर्मों से उद्भूत समझना

---

[२०] ब० सू० राव कृत 'ज्योतिष प्रवेशिका'।

चाहिए। किन्तु जब वह जीवन में अपनी अर्द्ध-स्वतन्त्र बुद्धि से कुछ करे, तो उस के कर्मों को प्रारब्ध कहा जायगा, अर्थात् जो वर्तमान अस्तित्व की अवस्था में किया गया है। परन्तु जब कोई मनुष्य कहे, कि अगले वर्ष मैं एक व्यक्ति की हत्या करूँगा, अथवा एक लड़की से जब वह पौढ़ हो जायगी तो, व्यभिचार करूंगा, अथवा धनवान् होने पर मैं दान करूंगा, तो कर्म अभी किया नहीं गया वरन् किया जाने वाला है, और यह **आगामी** वर्ग के अन्तर्गत आएगा। यह भी पूर्वकर्मों और वर्तमान संकल्प-शक्ति के मिलाप से उत्पन्न हुआ होगा, अथवा अन्य गुह्य शक्तियों के कारण सम्भव होगा।

पूर्व-कर्म और सहज-स्वभाव

"सो कर्म की प्रत्येक प्रकार—संचित, प्रारब्ध और आगामी—पुनः तीन श्रेणियों में विभक्त करनी पड़ती है। मनुष्य के सब कार्य तीन शीर्षकों के अधीन बांटे जा सकते हैं। (१) कायक—शरीरिक; वाचक—वाणी से सम्बन्ध रखने वाले; और (३) मानसिक—मन के विकार। मनुष्य कुछ काम अपने शरीर के द्वारा करता है, जैसे लात मारना, आघात पहुंचाना, भिचकाना, आलिंगन करना आदि। ये सब शारीरिक क्रियाएँ कायक अथवा काय वा शरीर से सम्बन्ध रखने वाली, कही जाती हैं। वे कार्य, जो वह वाणी से करता है, वाचक कहे जातें है और ये प्रथम वर्ग के—कायक—कर्मों से अधिक बलशाली होते हैं। इस के पश्चात् मन के कर्म हैं, अर्थात् शुभ और अशुभ चिन्तन; ये मानसिक, अथवा मन से सम्बन्ध रखने वाले, कहे जाते हैं। यतः मन की शक्ति प्रकृति में इस समय

तक पाई गई सब शक्तियों से प्रवल है, अत एव मन के कर्म सब से अधिक वलिष्ठ होते हैं और उग्रता में अन्य सब प्रकार के कर्मों को अतिशयित कर देते हैं। इस प्रकार संचित के साथ भी, एवं प्रारव्ध और आगामी के साथ भी, तीन तीन प्रकार के कर्म जुड़े हुए होते हैं, और यहीं से कर्मवाद की जटिलताएँ आरम्भ होती हैं।"

कर्म का सिद्धान्त

कर्मवाद हमें यह सिखाता है कि आत्मा एक सद्योत्पन्न वस्तु के समान इस जन्म में प्रविष्ट नहीं होती, प्रत्युत इस पृथ्वी पर, तथा अन्यत्र, अनेकों जन्म-जन्मान्तरों का चक्र काट कर आती है। उन में इस ने वे विशेष गुण प्राप्त किए हैं, जो वह वर्तमान जन्म में अपने संग लाई है, और भावी रूप-रूपान्तरों की प्राप्ति के पथ पर अग्रसर है, जिन का निर्माण यह इस समय कर रही है। कर्मवाद का यह कहना है, कि शैशव अवस्था न तो कोरे काग़ज़ों की एक पंजिका लेकर इस पृथिवीं पर आती है, जिस पर वह अपने इहलौकिक आलेख्यों (record) को आरम्भ करे, और न ही यह परमाणु-शक्तियों के जोड़ से वनी एक संक्षिप्तायु मांस की पुतली है, जो शीघ्र ही अवसन्न हो कर पुनः तत्वों में विलीन हो जाने वाली है। कर्मवाद का तो यह सन्देश है, कि इस पर सभी पूर्वजों के इतिहास अंकित हैं, जिन में से कुछ वर्तमान दृश्य की भान्ति हैं, और अधिकांश इस से भिन्न हैं, एवं दूरतम पुरा काल तक उन का प्रसार है। नए जीवन को ढालने में उन लेखों का प्रभाव उन के अस्तित्व की सूचना देता है, एवं उसे छोड़ ये लेख सामान्यतः समझे नहीं

जा सकते। दृश्यमान वस्तुवों के, सूर्य द्वारा वनाए हुए अदृश्य छाया चित्रों (invisible photographic images) की भान्ति, जव उन आलेखों को दिव्य दृष्टि की प्रयोगशाला (laboratory) में सम्यक् शोधित (develop) किया जाता है, तो वे विशद रूप से उजागर हो जाते हैं। जीवन की चलत्प्रावस्था (current phase) भी स्मृति के गुप्त आगारों में सुरक्षित हो जायगी, जिस से कि यह आगामी जन्मों पर अज्ञात रूप से अपना प्रभाव डाल सके। वे सव गुण, जो हम इस समय शरीर, मन और आत्मा में धारण किए हुए हैं, पुरा काल के अवसरों का सदुपयोग करने से ही हमें उपलब्ध हुए हैं। वस्तुतः, हम सव युगों के उत्तराधिकारी हैं, क्यों कि यह अवस्थाएँ हमारे भाग में वहुत दूरवर्ती कारणों से आई हैं, जिन्हें स्वयं हम ही ने अपने पुरातन जन्मों में सृजन किया था। और भूत काल के प्रारोचनों (impetuses) द्वारा संगृहीत प्रवेग (Momentum) से ही कारण-कार्य (अथवा कर्म) के दिव्य सिद्धान्त के अनुसार हमारा भविष्य प्रवाहित होगा। संसार में कोई पक्षपात नहीं है, प्रत्येक को उन्नत और अग्रसर होने के लिए एक-जैसी, और सदा रहने वाली, सुगमताएँ प्राप्य हैं। जो आज सांसारिक पदवी के उच्च शिखर पर पहुंचे हुए हैं, वे भविष्य में निकृष्ट परिस्थिति में डूवे हुए हो सकते हैं। केवल आत्मा के आन्तरिक गुण ही सदा संग रहने वाले साथी हैं। एक धनपति आलस्य वशतः अगले जन्म में भिखारी हो सकता है, और इस समय परिश्रम से काम करने वाला भावी महत्ता के वीज वो रहा है। इस समय वीरतापूर्वक सहन किए हुए कष्ट,

अगले जन्म में सन्तोष और साहस का पुंज उत्पन्न करेंगे; कठिनाइयों से बल की उत्पत्ति होगी; आत्म-त्याग से संकल्प शक्ति का विकास होगा; इस जीवन में सुसंस्कृत की हुई रुचियां आगे जा कर कोई न कोई अच्छा फल प्रदान करेंगी; एवं उपलब्ध शक्तियां, जब कभी सम्भव होगा, अपने आप को मितव्ययता के नियमानुसार (by the lex parsimonæ) प्रभावी सिद्ध करेंगी, जिस नियम पर कि भौतिक विज्ञान के सिद्धान्त अवलम्बित हैं। **व्युत्क्रम विधि से** (*vice versa*) अचेतन वृत्तियाँ, अदम्य प्रवृत्तियां, विचित्र प्रकार के अभिनिवेश, रुचिर व्यसन और आत्मा को स्फुरित कर देने वाली मित्र-भावनाएँ, जो आज विद्यमान हैं, वे पूर्वकाल के दूर-पहुँच कर्मों से ही विकसित हुई हैं।

कर्म वे हैं, जो हम कर चुके हैं, और कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि, **भविष्य भूत** ही है। सो भविष्य को जान लेना भी सम्भव होना चाहिए। एक दैवज्ञ अपनी कला के द्वारा सूक्ष्म माध्यम के अन्दर अफलीभूत कर्मों का मेघ अनुभव कर लेता है, और उसे वाचने का यत्न करता है। ग्रह केवल पूर्व कर्मों का फल बताते हैं, एवं 'भाग्य' अथवा 'विधि' ऐसी कोई वस्तु हमारे ऊपर नियन्त्रण करने वाली नहीं है। "ग्रहों की सूचनाएँ कुछ कुछ वैधानिक न्यायालयों के '**कारण समुपस्थित करो**' के आदेशों की भान्ति हैं। उन में वर्णित धाराएँ पारिभाषिक (technical) हैं, और वे बताती हैं, कि व्यक्ति-विशेष पर किस प्रकार के अपराध, अथवा कर्तव्यपालन में प्रमाद, का अभियोग आरोपित हुआ है।

उसे उन का फल भुक्तने के लिए सज्ज हो जाना चाहिए। इसी प्रकार कोई व्यक्ति दूसरे से अनुचित रूप से कुछ उधार ले लेता है, और उसे प्रत्यर्पित नहीं कर पाता। इस से दोषी के विरुद्ध निर्णय-पत्र (degree) प्रकाशित हो जाता है और उस के अनुपालन (execution) के आदेश निकल जाएंगे। निर्णय-पत्र दोषी को किसी प्रकार धन कमा कर उधार चुकाने का निषेध नहीं करता, और न इस बात से रोकता है, कि वह ऋण-दाता के पास जाकर उस की मांग पूरी करने के लिए अन्य उपाय बरते, यथा अपनी सेवा उस के अर्पण करे, सम्बन्धियों और मित्रों को बीच में डाले, दया के लिए प्रार्थना करे, इत्यादि। तथैव, ग्रह पूर्व-कर्मों के अच्छे वा बुरे फल की सूचना देते हैं, और यह बात व्यक्ति विशेष पर छोड़ देते हैं कि वह चाहे तो उन का प्रतिकार करे, और चाहे उन्हें पूर्ण प्रभाव दिखाने दे। इस प्रकार अच्छे वा बुरे, जो भी संचित-कर्म हमारे लेखे में हैं, उन्हें संकल्प-शक्ति की सहायता से प्रारब्ध-कर्मों द्वारा घटाया और बढ़ाया जा सकता है, और संकल्प-शक्ति की क्षमता अथवा सामर्थ्य (potentiality) असीम है। सुतराम्, ज्यौतिष-विद्या संकल्प-शक्ति को क्षीण नहीं करती। विज्ञान पौधों और पशुओं के विशिष्ट स्वभावों (idiosyncrasies) का कारण पूर्व पीढ़ियों (generations) का वातावरण बताता है, और सहजात-वृत्ति (instinct) को वंशक्रमागत अनुशील (hereditary habit) कहता है। ठीक इसी प्रकार व्यक्तित्व का विकास होता है, जिस के अनुसार जातक एक नवीन युग का सूत्रपात उन विशिष्ट गुणों

से करता है, जो उस ने पूर्वजन्मों में संचित किए हैं। इस प्रकार राशिभूत (treasured) गुह्यगुणों के योग-फल में वह एक नए व्यक्तित्व का अनुभव भी सम्मिलित कर देता है। अपने भौतिक शरीरों में से अतिवाहित होते समय आत्मा—वह सार-भूत 'अहं'—अपने निजी चरित्र, अर्थात् अपनी व्यक्तिगत सत्ता को प्रदर्शित करने वाले गुण-दोष समूह को संकलित करता रहता है, जो भिन्न भिन्न जन्मों को एक साथ पिरो कर परस्पर सम्वन्धित रखने में एक स्थायी सूत्र का काम देता है। इस लिए, आत्मा एक शाश्वत जल-कण के समान है, जो कभी अनादि काल में अपनी जननी सिन्धु से अलग होगया, एवं मेघ और वर्षा, हिम और भाप, सरोवर और नदी, तथा पंक और वाष्प आदि अवस्थाओं में अगण्य वक्रताओं के कूट-चक्र से होता हुआ—नाना जन्मों में संचित अपने अनुभव सहित—अन्त में सव के केन्द्रीय हृदयस्थल में लौट आने की वाट जोट रहा है।

हमारा यह भूल जाना, कि सुख-दुःख, गुण-अवगुण और लाभालाभ का वर्तमान अनुक्रम किन किन करणों से उत्पन्न हुआ, उन के विद्यमान होने के विरुद्ध कोई युक्ति नहीं और न ही इस योजना के न्याय-संगत होने में कोई विघ्नवाधा डालता है। क्यों कि यह अस्थायी विस्मृति वह पीड़ा-नाशक औपध है जिस के द्वारा दयालु वैद्य हमें क्लेश और शोक के अन्धकारमय आगारों से पूर्ण-आरोग्य की ओर ले जाता है।

स्पर्धा और ईर्पा का कारण

कर्म का सिद्धान्त हमें शुद्ध चिन्तन के लिए युक्ति अथवा निर्दिप्ट-मात्रा में आज्ञप्ति (graded sanction) प्रदान करता

है। यह सिद्ध करता है, कि सब मनुष्य वस्तुतः एक ही हैं, और हमारा कोई कार्य, जो अपने प्रतिवेश (पड़ौस) अथवा सांझीवालता (commonweal) को हानि पहुंचाता है, वह स्वयं हमारे लिए भी क्षतिकारक है। सर्वतः उपरि, यह एक ऐसे उच्च कोटि के चैतन्य को व्यक्त करता है, जहां न्याय-परता, अथवा शुद्धाचार, जीवन का एक आभ्यान्तरिक नियम बन जाता है, और मनुष्य ठीक कर्म इस विचार से नहीं करता, कि इस से लाभ होता है, अथवा इस से आत्म-हानि से बचाव होता है, वरन् इस लिए, कि उसे ऐसा करना ही चाहिए, यह निर्विवाद और युक्तियों से अतीत का विषय है। कर्मवाद ईर्षा-द्वेष का मूल कारण ही मिटा देता है, जिन से कि वैमनस्य उत्पन्न होता है। यह असन्तोष का अन्त कर होता है। बहुत अंशों तक यह मृत्यु का भय भी नष्ट कर देता है, क्यों कि जहां पुनर्जन्म में सच्चा आन्तरिक विश्वास है, और अनुरक्ति के इस नियम पर भरोसा है, के जिन्हें हम प्रेम करते हैं, उन से अवश्य पुनर्मिलन होगा, वहां चिन्ता किस बात की?

कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास, जो कि भारत के दार्शनिक वाङमय में सर्वत्र विस्तीर्ण है, तत्वों के विकासन और मूल्यांकन (invaluation) सम्बन्धी वैज्ञानिक सिद्धान्तों को ही पुनरुत्पादित करता है। यह विचार, कि 'आत्मा शरीर से पुरातन है', भारत के कोटिशः मनुष्यों की राजकार्य, मीमांसा, निर्माण-कला, और काव्य में भव्य कृतियों का आधार बना। प्राच्य देशों में सर्वत्र यह एक केन्द्रीय विचार है। यह केवल निरक्षर जनता का अन्ध-विश्वास नहीं है।

यह हिन्दु अध्यात्म-विद्या का मौलिक सिद्धान्त—उन के सब आर्ष-ग्रन्थों का आधार—है। ऐसी जराधवल दार्शनिक विचार-धारा, जिसे युग-युगान्तरों के मान्य प्रमाणों ने सत्यसिद्ध किया है, जो काल के आरम्भ से संसार के बहुत बड़े भाग के विचारों पर शासन करती आ रही है, और जो किसी न किसी रूप में प्रत्येक महान् धर्म के अनुयायियों द्वारा मानी जाती है, निस्सन्देह अतीव सम्मान की पात्र है, और अध्ययन की जाने योग्य है।

आधुनिक प्रगति का अभिमान, अथवा दम्भ, जैसे पुराकाल की विस्मृत सभ्यताओं के प्रति श्रद्धा नहीं रखता, वैसे ही प्राचीन आदर्शों के लिए भी सम्मान नहीं दिखाता; यद्यपि पूर्वजों ने वह सब कुछ, जिस पै हमें आज गर्व है, तत्वरूप में पहले से आदृष्ट कर रखा था, अथवा उस से भी आगे निकल गए थे।

लेखाओं का भूतीकरण

इस प्रसंग में, अमरत्व और पुनर्जन्म पर **लाखोव्स्की** (Lakhovsky) के कथनों का वर्णन किया जा सकता है। उन्हों ने एक नए ढंग से इन महत्वपूर्ण प्रश्नों तक पहुँचने का यत्न किया है, और वह इन अर्थों में, कि वे इन (दोनों) परिकल्पों (concepts) को भौतिक और जीव-वैज्ञानिक आधार पर स्पष्ट करते हैं। उन के '**भूतीकरण और अवभूतीकरण**' (Materialisation and Dematerialisation) नामक सिद्धान्त के अनुसार, भौतिक पदार्थ के सृजन और नाशन की क्रिया निरन्तर चालू रहती है। "संघनी होने से वैश्व रश्मियाँ (cosmic rays) विद्युत्कणों, परमाणुओं और अणुओं में

परिणत हो जाती हैं, और व्युत्क्रम विधि से, रेडियो-प्रक्रिया में हम भूत-पदार्थ का रश्मियों में परिणत होना देखते हैं।" अपनी पुस्तक '**भौतिक-पदार्थ**' (Matter) में लाखोव्स्की (Lakhovsky) वताते हैं कि कैसे एक तारे से आने वाली रश्मियाँ किसी अन्य ग्रह अथवा तारे पर रहने वाले प्राणियों के जीवाणुओं (chromosomes) में अनुकम्पन (sympathetic vibration or resonance) उत्पन्न कर सकती, और जीवन का संचार कर सकती हैं। दूसरे शब्दों में वे यह ध्वनित करते हैं, कि प्रकाश किरणों द्वारा जीवन लगातार एक ग्रह से दूसरे तक, अथवा पृथिवी से किसी अन्य ग्रह अथवा तारे तक, संप्रेषित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया से, उन का ऐसा विचार है, हम भौतिक-रूप में, रश्मियों के भूतीकरण द्वारा, सदैव जीवित रहते हैं। पाठकों को पता होगा, कि हिन्दु ज्यौतिष के अनुसार, पंचम गृह का अध्ययन करते समय, हमें यह आदेश होता है, कि पहले दम्पति के उपजाउ होने वा न होने के विषय में निश्चय करलें, और एतदर्थ जिन्हें '**वीज**' और '**क्षेत्र**' कहा जाता है, उन पर ध्यान दें। ये केवल शुक्राणु (sperm) और अण्डाणु (ovum) को ही व्यक्त नहीं करते, जैसे कि उन का अर्थ सामान्यतः समझा जाता है, प्रत्युत उस 'तत्व' को प्रकट करते हैं, जो पुल्लिगीय और स्त्रीलिंगीय आर्तवों को उपजाऊ (fertile), अथवा एक नवीन आत्मा के प्रविष्ट होने के अनुकूल, वनाता है। पति और पत्नी शारीरिक दृष्टि से सामान्य हो सकते हैं, और उन का दाम्पत्य जीवन सुखमय भी हो सकता है; पर ज्यौतिष-नियमानुसार उन के 'वीज' और

'क्षेत्र' वलवान् नहीं हैं, तो उन के कोई सन्तान नहीं होगी। किसी वीज, अथवा क्यारी में, उपजाऊपन, अथवा उत्पादन-शक्ति, के अभाव का **लाखोव्स्की** महोदय से एक वड़ा युक्ति-युक्त कारण प्राप्त हुआ हैं, क्यों कि उन की "प्रतिज्ञा (claim) है, कि दो भिन्न लिङ्गीय जीवाणुओं का मिलाप अपने आप एक जीवित प्राणी उत्पन्न करने के लिए अपर्याप्त है।.............. यह आवश्यक है, कि जव मिलाप हो, तो उसी क्षण विशेष प्रकार की वैश्व-रश्मियाँ (cosmic radiation) फलित अण्ड (fertilised egg) के भीतर भौतिक अवस्था में परिणत हों"। क्या मानव जाति में इस प्रकार भौतिक-पदार्थ वनता है, वा नहीं, यह ज्यौतिप द्वारा वीज और क्षेत्र की विधि से निर्धारित किया जा सकता है। **लाखोव्स्की** अपनी '**नित्यता, जीवन और मरण**' में इस प्रकार कहते हैं:-

"इस के अतिरिक्त, हम सव जानते हैं, कि फलन (fertilisation) प्राय कई मासों तक, वरन् कई वर्षों तक, नहीं होता। गर्भाधान में यह विलम्व पुल्लिगीय वा स्त्रीलिंगीय प्राणी के विशिष्ट-रश्मि-समूह (specific radiations) के कारण हो सकता है, जो सदैव उन रश्मियों के साथ अनुकम्पा की अवस्था (condition of resonance) में नहीं होतीं, जो भौतिकपदार्थ के सृजन (materialisation) के साथ निकलती हैं। इस प्रकार प्रथम कोशा (cell) से जीव का विकास वास्तव में उन रश्मियों का भूतपदार्थ (matter) में परिणत होना ही है, जो उस का आत्मीय 'अहं' (ego) किसी अन्य ग्रह से **प्रसारित** कर रहा है। वह जीव उस विशेप

तेज:पुंज (complex of radiations) के प्रभवाधीन विकास की ओर अग्रसर होता रहता है, जो उस सजीव पदार्थ से आ रहा है, जिस ने सर्व प्रथम उसे जीवन प्रदान किया था। उस जीव के अपने प्रान्दोलन के कारण वे रश्मियां उस में आजीवन उन गुणों का संचार करती रहती हैं, जो किसी अन्य ग्रह पर वसने वाले उस के इतर 'अहं' में पाए जाते हैं।"

"इस समस्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है, कि कैसे प्रत्येक सजीव सत्ता (कीटक, जीवसार, पौधा, पशु, मनुष्य) अन्य ग्रहों पर अपना प्रतिरूप उत्पन्न करके मानो अपना ही विस्तार वहां अनन्त दूरी तक संतानित कर देती है, जहां कि स के रश्मिपुंज को अनुकम्पन (sympathetic vibration or resonance) की अनुकूल अवस्था मिल जाय, एवं ब्रह्माण्ड के विभिन्न भागों में अपने को भौतिक रूप में परिणत करके नित्यता को प्राप्त हो जाती है। रश्मियों के एक ग्रह से दूसरे तक प्रचारण द्वारा भौतिकपदार्थ (matter) बनने की प्रक्रिया अनन्त काल और दूरी तक लगातार चालू रहती है, और असंख्य वार अपने को दोहराती रहती है। सब ग्रहों पर प्राणी-मात्र का जीवन, जिन में मनुष्य भी आ जाता है, क्रमिक और शाश्वत अनुकम्पन (resonance) द्वारा भूतपदार्थोत्पादन (materialisation) के परिणाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

"इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि जो प्राणी जीवन से वंचित हो जाता है, वह वास्तव में मृत्यु का जो ठीक अर्थ है, उस के अनुसार, मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाता, प्रत्युत पूर्ण

चैतन्य सहित संसार के अन्य उपान्तों में जीवित रहता है। ऐसे प्राणी किसी पूर्व पुनर्भौतिक करण (rematerialisation) द्वारा पृथिवी पर फिर सम्यक् जन्म ग्रहण कर सकते हैं, और अस्थि-मांस के पिण्ड में पूर्ण व्यक्तित्व के साथ पुनः जीवन यापन कर सकते हैं। अपि तु, हम स्वयं उन प्राणियों के भौतिक-करण द्वारा पुनरुत्पन्न हुए हैं, जो हमारी पृथिवी पर, अथवा अन्य ग्रहों पर, विद्यमान हैं, वा रह चुके हैं। अतः जो महापुरुष पुरातन काल में मर चुके हैं, वे वस्तुतः मरे नहीं, वरन् मांस और अस्थियों के पिण्डों में पूर्ण चैतन्य के साथ अन्य ग्रहों पर रह रहे हैं, और अपना कार्य करते जा रहे हैं।"

नक्षत्रों और ग्रहों के प्रान्दोलन

"मानव जीवों का अन्य नक्षत्रों पर इस प्रकार पुनर्जन्म धारण करना कतिपय गुत्थियों को सुलझा देता है, जिन का और कोई स्पष्टीकरण नहीं मिलता। उदाहरणार्थ, साधारण से माता-पिता के यहां उत्पन्न एक गुणातिरेचयुक्त पुरुष की असाधारण अभिरुचि का हम क्या कारण समझें? वंश क्रमागतता के नियम (Laws of heredity) अपवादित, अथवा उल्लंघित, प्रतीत होते हैं, और उक्त व्यक्ति की नियमातीत विशेषताओं का कारण बताने में असमर्थ हैं। इस के विपरीत, गर्भाधान के समय अन्तरिक्ष में मानव-किरणों के जटिल-समूह के संचार के प्रभाव द्वारा यह सब बात सम्यक् स्पष्ट की जा सकती है। यह अद्भुत मेधायुक्त प्राणी (एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक अन्तरिक्ष में व्याप्त कोशा-रश्मियों—cellular radiations—के भौतिक-करण की) उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा

वना है, और एतर्थ हमें आभारी होना चाहिए उस मिलाप, अथवा संमिलन का, जिस में संयुक्त जीवतत्व (united gametes) उन रश्मियों के सम्पर्क में आते हैं, जिन का विशिष्ट प्रान्दोलन दर (characteristic rate of vibration) उन के अपने दर के समान होता है, और जो किसी अन्य असामान्य व्यक्ति से आ रही हैं, जिस की किसी दूरवर्ती नक्षत्र पर मृत्यु होगई है।"

"सो वड़े वड़े विचारक, वड़े वड़े कलाकार, वड़े वड़े दार्शनिक, वड़े वड़े राजनीतिज्ञ एवं अन्य महान् विभूतियाँ, जिन के नाम इतिहास ने प्रचारित किए हैं, सम्भवत: अन्य विचारकों, कलाकारों, दार्शनिकों और राजनीतिज्ञों की पुनरावृत्तियाँ ही थीं जो अन्यत्र, तारों पर अथवा पृथिवी पर, मर चुके हैं।"

यह संकेत करते हुए, कि इन व्यक्तियों का जन्म उस समय अवश्य होगा, जव तारों और ग्रहों के प्रान्दोलन पुन: उन के अपने प्रान्दोलन-दर (rate of vibration) के अनुकूल होंगे, **लाखोव्स्की** इस परिणाम पर पहुंचे हैं, कि :—

"अभी एक कारण और भी है, कि क्यों हम उन वादों (theories) को गहन परीक्षा के विना ही एक ओर न फेंक दें, जो इस वात को वड़ी महत्ता देते हैं, कि मनुष्य के गर्भ में प्रविष्ट होते और जन्म लेने के समय आकाश पर तारों की स्थितियों का उस (मनुष्य) के भाग्य पर वहुत प्रभाव पड़ता है। मैं ने तारों की स्थितियों के प्रभाव सम्वन्धी प्रश्न पर अन्यत्र अपनी पुस्तकों '**जीवन का रहस्य**' और '**नित्यता, जीवन और मरण**' में विचार किया है।"

लाखोव्स्की ने वैश्व-रश्मियों (cosmic rays) और भौतिक विषयों पर उन के प्रभाव सम्बन्धी, अपनी योग्य और विद्वत्तापूर्ण विवृत्ति द्वारा स्पष्ट ज्यौतिष-वाद का समर्थन किया है।

तृतीय प्रकरण

ज्यौतिष क्या है ?

कुछ लोग इस के लक्षण 'तारों की विद्या' बताते हैं। इतर यह कहते हैं, कि यह एक कला है, जिस से मनुष्य का भविष्य जाना जा सकता है। इस की परिभाषा यों भी की जा सकती है कि यह "ग्रहयोगों के प्रकाश में, व्यक्तियों और जातियों, दोनों की अतीत प्रवृत्तियों और भावी कर्मों का पता लगाने और विश्लेषण करने का शास्त्र है"। ज्यौतिष-विद्या ग्रहों की गतियों (अथवा प्रान्दोलनों) के प्रति जीवन की प्रतिक्रियाएँ बताती है। संस्कृत में इसे 'होरा-शास्त्र', अथवा 'ज्यौतिष' अथवा 'काल-विज्ञान' कहते हैं। यह सब परि-भाषाएँ इस विषय का ठीक ठीक भाव अभिव्यक्त नहीं करतीं। यह एक वैज्ञानिक विषय से बहुत बढ़ कर है। यह विज्ञानों में भी परम-विज्ञान है, जो कि सब प्रकार के ज्ञान की कुञ्जी है। यही वह ज्ञान है, जो मनुष्य को प्रकृति-माता से सम्बद्ध करता है और यह निर्धारित करता है, कि जीवन में अनुशासन और व्यवस्था का अधिराज्य है, एवं आकस्मिकता तथा यदृच्छा का कोई स्थान नहीं। आकाश-स्थित पिण्डों में सब से अनुपम विलक्षणता उन के परिभ्रमणों में उच्च कोटि की व्यवस्था का अस्तित्व है। ऐसी अवस्था में, क्या पृथिवी पर, अथवा उस पर घटने वाली घटनाओं में, उच्छृङ्खलता रह सकती है ? ज्यौतिष ने यह उत्तर दिया है, कि आकाश-मण्डल

की सुव्यवस्था और भौमिक घटनाओं को आमनेसामने रख (juxtapose) कर, भविष्यवाणी कर सकने की संभवता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। जब एक प्रत्यक्ष प्रभाव किसी कारण का फल है, तो ज्यौतिष उसे मापने का प्रतीक बन जाता है। किसी कारण का प्रभाव ही तो उन विशेष श्रेणी की संज्ञाओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है, जिन्हें हम 'ग्रहों' का प्रभाव' कहते हैं।

स्वज्ञा (अन्तर्दृष्टि) और अवेक्षण

प्राचीन लोगों ने मनुष्य पर ग्रहों का प्रभाव दो विधियों से विदित किया होगा; (१) अन्तर्दृष्टि (intuition) द्वारा, अथवा (२) अवेक्षण (observation) द्वारा। प्रथम विधि निस्सन्देह अधिक विश्वसनीय है। अन्तर्दृष्टि, अन्तर्दर्शन अथवा **दिव्य-दृष्टि,** एक वैयक्तिक अनुभव अथवा अनुभूति (perception) है; अथवा इसे एक सुक्षमता (faculty) समझिए, जो प्राचीन महर्षियों ने तपस्या और सदाचारमय जीवनचर्या एवं योगाभ्यास द्वारा प्राप्त की थी। **बर्ट्रेण्ड् रस्सल्** का विचार है कि "तथ्य-संग्रह के साधन रूप में अन्तर्दर्शन (introspection) एक सयौक्तिक (valid) विधि है, और पर्याप्त अंशों में वैज्ञानिक नियन्त्रण के अधीन आ जाती है।" अन्तर्दृष्टि बुद्धि से भी ऊपर चली जाती है। युङ् महोदय के अनुसार, "अन्तर्दृष्टि एक प्रकार की सहजात वृत्ति मूलक (instinctive) श्लाघा है, (जो प्रशंसित पदार्थ के अभ्यान्तरिक गुण-दोषों पर अवलम्बित नहीं होती, वरन्) जो उस के अन्तरस्थों (contents) की प्रकृति के विषय में

सर्वथा उदासीन और अनपेक्षक होती है। अन्तर्दृष्टि द्वारा कोई एक अन्तरस्थ, सम्पूर्ण पदार्थ के रूप में, समुपस्थित किया जा सकता है। अन्तर्दृष्टि-अभिज्ञान (intuitive cognition) में एक मौलिक प्रकार की निश्चितता और विश्वास का अंश पाया जाता है, जिस ने **स्पीनोज़ा** (Spinoza) को '**अन्तर्दृष्ट ज्ञान**' सब से उत्तम प्रकार का संज्ञान मानने की योग्यता प्रदान की।" पतञ्जलि अपने प्रसिद्ध योग-सूत्रों में परामर्श देते हैं, कि अध्यात्मिकसिद्धि के किसी विशेष स्तर पर पहुंचने के पश्चात् एक योगी विभिन्न ग्रह-पिण्डों के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकता है और उन के रहस्यों को यान्त्रिक उपकरणों के विना ही अधिगत कर सकता है।

इस के संग संग, निरीक्षण ने भी अपना कार्य किया होगा। ऋषियों ने अकेली-अकेली और सामूहिक घटनाओं को वार-वार घटित होने वाले ग्रहविन्यासों के प्रकाश में ध्यान पूर्वक देखा होगा, एवं विशेष ग्रह-योगों के प्रति विभिन्न प्रकार के लोगों की मनोवैज्ञानिक प्रति-क्रियाएँ भी देखी होंगी। सैंकड़ों वर्षों तक इस प्रकार के निरीक्षणों ने ऋषियों को समाहित कर दिया होगा, कि ज्योतिश्चक्र की राशि-विशेष में जन्म होने से सुविशेष प्रकार की मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक विलक्षणताएँ प्राप्त होती हैं। ग्रह, राशियाँ और राशि-चक्र तो केवल चिह्न हैं, जो आवृत्ति-नियमों (laws of periodicity) को व्यक्तियों के तथा जातियों के जीवनों पर लागू करना सम्भव वना देते हैं।

दान्ते और ज्यौतिष

ज्यौतिप की सत्यता पारिसांख्यिक (statistical) विधियों द्वारा भी स्थापित की जा चुकी है। जैसे कि **बर्ट्रेण्ड् रस्सल्** कहते हैं, "परिसंख्यान (statistics) आदर्श रूप में बड़े बड़े समूहों के विपय में सर्वथा निरवद्य नियम हैं; दूसरे नियमों से उन का भेद इसी बात में है कि वे समूहों से सम्बन्ध रखते हैं, व्यक्तियों से नहीं।" परिसंख्यान के आधार पर दिखाया जा सकता है, कि ज्यौतिप के अनेकों योगों की परि-पुष्टि हो चुकी है। यह भी देखा जा सकता है, कि कतिपय उच्च कोटि के विचारक और मनीषी प्रत्येक युग में ज्यौतिप की यथार्थता का अनुमोदन करते रहे हैं और अपने जन्म-पत्र का फलादेश पुछवाते रहे हैं। **अवोन् का भाट महाराजा लियर्** के मुख से निम्न-लिखित शब्द कहलवाता है:–

> "ये नक्षत्र ही हैं, हमारे ऊपर विराजमान नक्षत्र, जो हमारी दशाओं पर शासन करते हैं।"

इस से भी बढ़ कर उस का ज्यौतिप-जन्य उपहास का सहज-बोध है। एक असंतुष्ट खिलाड़ी के मुख से वह इस प्रकार परिदेवन करवाता है:

> "यह असम्भव है, कि जैसे मैं चाहूं, वैसे ही कोई काम हो; क्यों कि, श्रीमन्, मेरा जन्म उस समय हुआ था, जब कर्क उदय हो रहा था; और मेरे सब काम उलटे ही हो रहे हैं।"

दान्ते का ज्यौतिष प्रेम तो एक भव्य-शैली में लिखित है। हम अंतरिक्ष के विशाल प्रसार में उन का अनुसरण करते हैं।

> "..............मैं ने अवलोकित की वह राशि, जो वृष के पश्चात् आती है, और उसी में लीन हो गया। अहो, उज्ज्वल तारागण! अहो ज्योतिः-पिण्ड, अपने गर्भ में वे प्रवल गुण धारण किए हुए हो, जिन से मैं समझता हूँ, मेरी समस्त प्रतिभा, जो कुछ भी वह है, प्राप्त हुई है; तुम्हारे संग जन्म लिया, और तुम्हारे साथ अपने आप को छिपा रखा है, उस ने जो समग्र नश्वर जीवितों का जनिता है, जव मैं ने **टस्कनी** देश की वायु का प्रथम आस्वादन किया; और फिर जव मुक्त कर से मुझ पर यह कृपा की गई कि उस विराट् चक्र में प्रविष्ट हो जाऊं, जो तुम्हें चलाता है, तव जाकर तुम्हारा क्षेत्र संप्रदान हुआ था।"[२१]

ऍच्० फ्लॅण्डर्ज डन्वार् (H. Flanders Dunbar) लिखती हैं, कि "**दान्ते** के विचार में ज्यौतिष एक प्रशस्त, अथवा सर्वोत्तम, विज्ञान है।" आगे चल कर वह फिर कहती हैं, "**दान्ते** की दृष्टि में, व्यष्टीकरण (individualisation) का सिद्धान्त ग्रहों और नक्षत्रों का प्रभाव ही है, अथवा यह कहना और भी यथार्थ होगा, कि यह सवुद्धि कारकों का प्रभाव है, जो उन्हें चलाते हैं। वह 'अहम्', जिसे साक्षात् ब्रह्म ने

---

[२१] 'स्वर्ग', २२ म सर्ग, देखिए हुङ्गाङ् कृत 'ज्यौतिप का संक्षिप्त इतिहास'।

रचा है, शरीर के साथ सम्पर्क में आते ही नक्षत्रों के प्रभावान्तर्गत जाता है, और जन्म के समय मानो लाख (wax) की न्यायी मुद्रा द्वारा अंकित हो जाता है। तारों की छाप अच्छी ही होती है, क्यों कि कोई भी स्नेह भावना ऐसी नहीं, जो परमात्मा की स्नेहभावना को प्रतिविम्वित नहीं करती। कोई व्यक्ति न्यून वा अधिक मात्रा में परिपूर्ण वनता है, तो उन्हीं सद्गुणों, अथवा अच्छाइयों को, उन के वास्तविक सम्वन्धों सहित, एकतान वनाने तथा उपयुक्त अंशों में मिलाने से। यह सम्भव है, कि एक आधुनिक पाठक, जिस के मस्तिष्क में ज्यौतिप के अत्यन्त सरल होने की धारणा वैठ चुकी है, दान्ते का अभिप्राय वहुलांश अवगत न कर सके। ....ज्यौतिप के विपय में ये सुपरिचित पंचांग और यन्त्रियां जो कुछ ध्वनित करती हैं, उन से यह वहुत जटिल भी है, और विधि में अधिक वैज्ञानिक भी।"[२२]

गटे (Goethe) तो ज्यौतिप के सिद्धान्त और प्रयोग के विपय में सुनिश्चित शब्दों में अपना मत प्रकट करते हैं। अपनी 'आत्म-कथा' का आरम्भ उन्हों ने इस प्रकार किया है :—

"मैं ने फ्रङ्कफोर्ट-ऑन्-दि-मेन् (Frankfort on the Maine) नामक स्थान पर, २७ आगस्त १७४६, ख्रीष्टाब्द को, मध्याह्न समय, जव कि घड़ी ने वारह वजाय, इस संसार में पदार्पण किया। तारों की दृष्टि शुभ थी; सूर्य देव कन्याराशि में विराजमान थे, एवं उस दिन की

---

[२२] देखिए 'मध्यकालीन विचारधारा में प्रतीकवाद'।

अति-भूमि को प्राप्त हो चुके थे। शुक्र और वृहस्पति 'मित्रस्य-चक्षुषा' अवलोकन कर रहे थे, और बुध भी शत्रु दृष्टि नहीं रखने थे। शनैश्चर और मंगल की स्थिति सम (तटस्थता की) थी। अकेले चन्द्रमा, जो कि पूर्णिमा में थे, और भी अधिक शक्ति लगा रहे थे, क्यों कि उन का विरोध ठीक अपनी ग्रह-घड़ी को पहुंच चुका था। इस लिए उन्हों ने मेरे जन्म को रोके रखा, और जब तक वह घण्टा व्यतीत नहीं होगया, जन्म नहीं हुआ। यही शुभ दृष्टियाँ, जिन्हें ज्यौतिषियों ने पीछे से मेरे पक्ष में बहुत शुभ बताया मेरे सुरक्षण का कारण हुई होंगी।"

मनुष्य तथा ब्रह्माण्ड

मैन्ली प० हॉल् (Manly P. Hall) यों कहते हैं :

"आइए, एक क्षण के लिए मान लें, कि वैज्ञानिकों ने कुछ महापुरुषों की जीवनियाँ लिखी हैं। तब '**अब्राहम् लिङ्कन्**' नामक विषय पर हमें स्यात् निम्न-लिखित सुचारु, संक्षिप्त और वैज्ञानिक परम्परानुसार सम्पादित निबंध देखने को मिले :—'**अब्राहम् लिङ्कन्**, स्तन-भोगी श्रेणी और मनुष्यजाति का एक पदार्थ, जो स्थान घेरता था, १७०९ में घटित हुआ और १७६५ में विघटित होगया। अनुमानतः, यह पदार्थ प्राय निम्न-लिखित तत्वों से विरचित था: प्राणवायु ६५ प्रतिशत, कोयला १ प्रतिशत, उदजन १० प्रतिशत, नाइट्रोजन् ३ प्रतिशत, कैल्शियम् २ प्रतिशत, फ़ॉस्फोरस् १ प्रतिशत, और शेष एक प्रतिशत में पोटाशियम्, सोडियम् क्लोरीन्, मेग्नीशियम्, लोह, आयोडीन्, फ्लोरीन्

और सिलिकन् की थोड़ी थोड़ी मात्रा सम्मिश्रित है। इस प्रकार का पदार्थ पृथिवी नामक ग्रह की एक विलक्षण विभूति है।'

"यद्यपि उस महान् जन-त्राता (लिङ्कन्) का यह विवरण अत्यन्त वैज्ञानिक, और यथार्थता के अनुसार है, तथापि यह उस की वास्तविक महत्ता को छू तक नहीं पाता। वास्तविक **अब्राहम् लिङ्कन्** एक प्रवुद्ध शक्ति, एक नैतिक ओज, एक साहसी आत्मा थी, जिस के जीवन और कृतियों ने मानव-सभ्यता की गतिविधि को अतीव प्रभावित किया। भौतिक-विज्ञान-वेत्ता आजीवन उस का घनत्व निकालते रहें, फिर भी वे **अब्राहम् लिङ्कन्** के भीतर '**मनुष्य**' का पता न पा सकेंगे!!!

"इसी विचार-विन्दु के अनुसंगत, हम यह अनुमान लगा सकते हैं, कि गणित-ज्योतिपिकों ने इदानीं पर्यन्त सचेत और सवुद्धि जगती की '**खोज**' नहीं की। यदि विश्व के अन्दर एक एक तत्व ढूंड निकाला जाय, और सव का वर्गीकरण भी हो जाय, फिर भी स्यात् विश्व स्वयं अज्ञात ही रहे। यदि गणित-ज्यौतिपिक कहतें है, कि वृहस्पति वातियों (gases) का पुंज है, तो वे केवल एक सत्य का उच्चारण करते हैं, जो उतनी ही उपयुक्तता के साथ मनुप्य के विपय में भी कहा सकता है। फिर भी एक सामान्य वैज्ञानिक अपने आप के इस नवीन वर्णन, वा लक्षण, को सुन कर प्रसन्न नहीं हो सकता। वरन् वह आग्रह करेगा,

(कि यह कहा जाय), कि उस के अणुओं और परमाणुओं ने मिल कर उस जैसे अद्भुत मनीषी का सृजन किया है।

"यह मानना सर्वथा विज्ञान-संगत है कि जगती माता ने अपनी समस्त बुद्धि तो मनुष्य को प्रदान कर दी, और सूर्य, चन्द्र, एवं तारागण आदि—जो भीम-काय पिण्ड नभोमण्डल को बसाते है—उन में वितरण करने के लिए अपने भ्रमण तथा परिक्रमण आदि यान्त्रिक गुणों के अतिरिक्त कुछ न छोड़ा। यदि मनुष्य का आचरण विचारयुक्त है, तो जगती (universe) का व्यवहार भी क्यों सबुद्धि नहीं ? यदि परमाणुओं का एक नगण्य सा संग्रह इस पृथिवी पर **अब्राहम् लिङ्कन्** ऐसी महान् आत्मा को उत्पन्न कर सकता है, तो अन्तरिक्ष के अन्दर परमाणुओं का वृहत्तर पुंज उस से भी महत्तर आत्मा की सृष्टि क्यों न करेगा ? यदि तारागण के रासायनिक योगों में दिव्य-बुद्धि का साक्ष्य ढूँडन से पाया नहीं जा सका, तो यह भी तो उतनी ही सचाई से कहा जा सकता है, कि मनुष्य के रासायनिक यौगिकों (chemical compositions) में मनुष्य की बुद्धि का परिचय भी कहीं ढूँडे नहीं मिला। प्राचीन कालिक मूढ़ लोगों का विश्वास था, कि ये तारे महान् आत्माओं के देह हैं, जो विवेक से भरपूर हैं, एवं यथार्थ में 'दिव्य' समझे जा सकते हैं। यह विश्वास अयुक्तियुक्त, अथवा विज्ञान के प्रतिकूल, नहीं कहा जा सकता, जब कि हम यह स्वीकार करते हैं, कि उदजन और प्राण-वायु, अन्य तेरह तत्वों के सहयोग से, परस्पर संघटित हो एक कॉलेज्

प्रोफ़ॅस्सर् का रूप धारण करके, कलन-गणित (calćulus) के उच्चतम प्रश्नों की रचना कर सकते हैं!!!

"सो यदि ज्यौतिप आकाशस्थ पिण्डों को विचार-शील शक्ति के केन्द्र मानता है, तो जो वात मनुष्य के अपने-आप में स्पष्ट दिखाई दे रही है, उस से वढ़ कर अयथार्थ तो कोई मांग तारों के लिए नहीं कर रहा। एक अकेला व्यक्ति अपनी दयालुता अथवा अत्याचार से सभ्यता का सारा नैतिक स्वरूप परिवर्तित कर सकता है। इतिहास ने यह दर्शा दिया है, कि मनुष्य ने अपने शरीर के आकार, अथवा भौतिक परिमा (physical volume), से वहुत वढ़-चढ़ कर, इतनी दूरी तक अपना प्रभाव जमाया है, कि वह असाध्य सा प्रतीत होता है। अपि च, यह वैयक्तिक-शक्ति भावी सन्तानों में संचरित होती रहेगी, और मनुष्य के अवसन्न हो जाने के पश्चात् भी चिरकाल तक एक प्रवल प्रेरणा के रूप में चलती जायगी। इसी प्रकार नक्षत्र पिण्ड विश्वव्यापी एकस्वरता अथवा समतुलन (equilibrium) के अंग वन कर, एक सर्वतः संतुल्य योजना के भीतर अवयवों के रूप में, एवं आचरण के निदर्श वन कर, एक दिव्य वातावरण समुपस्थित करते हैं, जिस के अन्दर प्रत्येक अपनी भौतिक रश्मियाँ शेप सव को समर्पित करता है, और अन्य भ्रातृ-तुल्य गोलों से नैतिक विद्युत् स्वयं ग्रहण करता है।"

प्रत्यक्षतः अपरूप धारणाएँ

लॉरॅन्स् जे० वॅण्डिट्, जो कॅम्ब्रिज् विश्व-विद्यालय के ऍम्० डी० हैं, तथा फ़ीवे डी० पेन्, यों युक्ति देते हैं, कि:

[२३] "हमें या तो इस तथ्य से सहमत होना होगा, कि एक ज्यौतिषिक का किसी व्यक्ति को विना देखे उस के ज्यौतिषिक मानचित्र को असाधारण शुद्धता से वाच सकना, केवल-मात्र मानसिक शक्ति, अथवा अन्तर्दृष्टि, पर निर्भर है। और नहीं, तो हमें एक ऐसे रहस्य से दो चार होना पड़ेगा, जो इस प्रश्न की गहराई तक जा पहुँचता है, कि मनुष्य का उस प्रत्यक्षत: वस्तुमय (seemingly objective) जगत् के साथ क्या लगाव है, जिस की झांकी, या तो आकाश में मिलती है, या दैनिक सम्पर्क के सुपरिचित सांसारिक क्षेत्र में। तो भी यह तथ्य वना रहता है, कि वड़े वड़े रूढ़ी-निष्ठ मनो-वैज्ञानिक भी, जिन में से कई एक के मन में इन 'प्रत्यक्षत: अपरूप धारणाओं' के विरुद्ध विद्वेष-भावना भरी होती है, यह मानने पर विवश हो गए हैं, कि एक कुशल ज्यौतिषिक उस व्यक्ति के गण (type) और योग्यता का अनुमान करने में वहुत अमूल्य सिद्ध हो सकता है, जिस का जन्म-पत्र उस ने वनाया है। उदाहरणार्थ, वह इस प्रकार की वातों के सम्वन्ध में भविष्य-वाणी कर सकता है, कि आया दो व्यक्तियों का विवाह सुखमय होने के लक्षण हैं, वा दु:खमय होने के, विवाह उत्पादक सिद्ध होगा अथवा निराशाजनक अथवा शेष जीवन में कोई संकटमय अवस्था आने वाली तो नहीं, और (यदि है, तो) वह व्यक्ति विशेष कैसे डट कर उस का सामना कर सकता है।"

---

[२३] 'यह लोक और वह,' अध्याय ११।

टायरल् (Tyrell) महोदय का विश्वास है[२४]

"कि न केवल ज्यौतिप, वरञ्च सामान्यतः सभी अध्यात्मिक विद्या एक धुँधली सी सूचक यष्टि है, जो विश्व के उस अंग की ओर संकेत करती है, जो देश-कालिक और कारणमय ढांचेसे, एवं इन्द्रिय-विषयों के उस संसार से, ऊपर और परे है, जिस पर वस्तुमय ब्रह्माण्ड (objective universe) का वर्णन करने का प्रयत्न करते हुए विज्ञान ने आज तक भरोसा किया है।"

[२४] मानव व्यक्तित्व की प्रकृति।

चतुर्थ प्रकरण

ग्रह और मानव

क्या ग्रह मनुष्य पर प्रभाव डालते हैं? पाठकों को इस का उत्तर विस्तारपूर्वक **प्रो० बी० सूर्यनारायण राव** लिखित 'ज्यौतिष-प्रवेशिका' में मिल सकता है, जो अपने परिमित विषय में एक निपुण कृति है। मैं केवल यह दिखाने का प्रयत्न करूंगा, कि ग्रह भौमिक विषयों पर अवश्य अपना प्रभाव डालते है। जब पृथिवी अपनी वर्तमान आकृति को ही सूर्य के प्रभावों के कारण प्राप्त हुई है, तो यह कहने में कहां तक तर्क संगतता है, कि इस के उपरिस्तर पर अवस्थित पदार्थ उस से प्रभावित नहीं होते? "सूर्य के कारण ऋतु में ईषन्मात्र परिवर्तन शिरावेदना, शिरोवेदना, श्वास-नाली की जलन, आंखों का दुखना, शीतला-माता, विषूचिका, मरोड़, महामारी आदि अनेकों रोग उत्पन्न कर देता है, जिन की गिनती नहीं हो सकती"। सिर पर युद्ध का भूत सवार हो जाना ग्रह-प्रभावों का एक उद्दण्ड उदाहरण है। हमारा स्वभाव और चित्तस्थितियां नाड़ीरहित ग्रन्थियों के स्राव पर निर्भर होती हैं। भय ऍण्डोक्राईन् (endocrine) स्रावों का विषय है; अनिर्णय (indecision) थाईमस् (thymus) का विषय है, प्रतिभा थाइरॉयड् (thyroid) का विषय है। सूर्य के व्यवहारचक्रों का इन ग्रन्थियों तथा उन के स्रावों पर अनुरूप प्रभाव पड़ता है, एवं फलस्वरूप मनुष्यों के आचरण पर। हमारे शरीर का एक-एक कोशा एक सजीव

विचारयुक्त सत्ता है; ये अनुरक्ति-नियम (Law of affinity) के अनुसार दल-वद्ध हो जाते हैं, और शरीर की कलाएँ (tissue) वनाते हैं; इन विभिन्न धातुओं से अंग वनते हैं, और प्रत्येक अंग अपना विहित कार्य सम्पादन करता है। ये सव, वहुलांश, एक दूसरे पर आश्रित हैं। इस प्रकार प्रत्येक अवयव में 'चिन्तन शक्ति' है, क्यों कि वह ऐसे कोशाओं से वना है, जो यह जानते हैं, कि क्या करना है, और कैसे करना है, और प्रकृति की यह अभिलाषा है, कि वे अपना अपना काम पूर्ण कुशलता से करें, जव तक कि किसी अवरोध, (अथवा अन्तराक्षेप) से युठभीड़ न हो—जिस का सिद्धान्त अयथार्थ परामर्श (wrong suggestion) है। एक प्राणी को प्रारोचनों (stimuli) का आभास पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभूति-शक्ति की सहायता से होता है, जिन में सव से मुख्य स्पर्शेन्द्रिय है। स्पर्शेन्द्रिय का विपय अन्य सव इन्द्रियों से विस्तीर्ण है। न केवल स्थूल वस्तुओं को छू कर अनुभव किया जा सकता है, प्रत्युत अदृश्य तत्व भी—यथा उष्णता, शीत, और ग्रह-प्रान्दोलन—स्पर्श-द्वारा अनुभव किए जा सकते हैं। विभिन्न प्रकार के ग्रह-प्रान्दोलन निरन्तर हमारे ऊपर प्रभाव डालते रहते हैं, जो कि हमारे इन्द्रिय-नाडियाँ ग्रहण करलेती हैं और उन्हीं से हमारी शारीरिक प्रति-क्रियाएँ, मानसिक-वृत्तियाँ और चित्त-स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। अतएव यह सम्भव है, कि सौर, चान्द्र और नाक्षत्रिक शक्तियाँ शिराओं (nerves) के द्वारा कोशाणुओं को अपनी संचलता प्रदान करती हों। नाना प्रकार के ग्रह-प्रान्दोलन—जिन्हें ज्यौतिप

की परिभाषा में योग, अथवा दृष्टियाँ, कहते हैं—अपने तरंग लाम्ब्य, तीव्रता, आवृति आदि की विभिन्नतानुसार इन्द्रियों में भिन्न भिन्न प्रारोचनों (stimuli) का संचार करते हैं।

आधान-लग्न और रश्मियाँ

जिन वैज्ञानिकों ने मानव जीवन पर सूर्य के धब्बों और वैश्व-रश्मियों के प्रभाव का अध्ययन करके ज्यौतिष के मौलिक सिद्धान्तों को स्वीकार किया है, उन के अनुसन्धानों में सब से विशिष्ट रूसी जीव-वैज्ञानिक और भौतिक-विज्ञान-वेत्ता, **प्रो० जॉर्जिस् लाखोव्स्की** महोदय के हैं। वे स्यात् प्रथम आधुनिक वैज्ञानिक थे, जिन्हों ने खुल्लम्-खुल्ला अपना यह विश्वास प्रकट किया, कि तारों और ग्रहों से आने वाली रश्मियाँ गर्भाधान और जन्म के समय किसी व्यक्ति के भावी भाग्य को प्रभावित कर सकती हैं। यह हमें आधान-लग्न, अथवा गर्भाधान के समय के महत्व, के विषय में महर्षियों के सिद्धान्त का स्मरण कराता है। यह ध्यान देने योग्य बात है, कि वाराहमिहिर ने यह सत्य दो सहस्र वर्ष पूर्व ही आख्यात कर दिया था, जब कि (पाश्चात्य) यूरोपीय सभ्यता का अभी जन्म भी नहीं हुआथा। **प्रो० लाखोव्स्की** अपनी पुस्तक '**महान् समस्या**' (Le Grand Problem) में यों कहते हैं:

"प्राचीन काल के ऋषि अन्तर्ज्योतिवशत: (वा स्वभावत:) जातक के जन्म समय आकाशस्य तारों की स्थितियों की बड़ी महत्ता मानते थे, तो यह अकारण नहीं था; क्यों कि न केवल इन तारों से आने वाले किरण-

समूह पशु और मानव-भ्रूण को प्रभावित करते हैं, वरञ्च पृथिवी पर सव सगात्र प्राणियों (organic beings) की वनावट गर्भाधान समय मानव अण्डे के ऊपर इन रश्मियों का जो प्रभाव पड़ता है, उस पर सीधी निर्भर होती है, क्यों कि सव भौतिक पदार्थ, सजीव किम्वा निर्जीव, विद्युत्कणों से वने हैं, जो कि भौतिक अवस्था में परिणत रश्मियाँ ही हैं।"

दूसरे शव्दों में **प्रो० लाखोव्स्की** ने दिखा दिया है कि वैश्व-रश्मियाँ (cosmic radiations), जो विविध तारों और ग्रहों से आ रही हैं, तथा जिन की वर्षा पृथिवी पर अन्तरिक्ष से हो रही है, "वे कोशामूल (cell-nuclei) के जीवाणुओं (chromosomes) पर आघात करती हैं। ये जीवाणु वैश्ववैद्युत अनुनादक (cosmo-electrical resonators) होते हैं जो उन वैश्व-रश्मियों (cosmic radiations) को ग्रहण करके अपने अन्दर रचा लेते हैं, जिन से जीव-विद्युत् (vital electricity) वनती है, एवं वह रहस्य-पूर्ण शक्ति अस्तित्व में आती है, जिसे हम 'जीवन' कहते हैं। और इसी प्रकार, उन का विचार है, कि मस्तिष्क के कोशाणु (cells) शृङ्ग-रूपी उभारों (projections) द्वारा तारों और ग्रहों के रश्मिसमूहों का चूपण कर लेते है, ठीक जैसे वितार-यन्त्र के स्पर्शक (radioantennæ) वितार-तरङ्गों को ग्रहण कर लेते हैं।"

प्रो० लाखोव्स्की के मतानुसार, "एक फलित (fertilised) अण्डे के जीवतत्व (gametes), जिन से

वंशानुगत (hereditary) गुणों को प्रकट करने वाले जीवाणु (chromosomes) बनते है, गर्भाधान समय एक नियत तरङ्ग-लाम्ब्य (specific wave-length) में परिणत हो जाते हैं, और वे इस योग्य होते हैं, कि किसी अन्य ग्रह अथवा तारे से आ रही उन के अपने समान प्रान्दोलन-दर (vibratory rate) वाली रश्मियों के साथ अनुकम्पन (resonance) उत्पन्न कर सकें।" फलस्वरूप, प्रोफ़ॅस्सर् महोदय कहते हैं, कि "सूक्ष्म-दर्शकीय वस्तुओं से भी सूक्ष्म शक्तियों का प्रसार-क्षेत्र (field of forces), जो फलित अण्ड में जीव तत्वों के मिलाप से वनता है, वह उन रश्मियों के साथ अनुकम्पन (resonance) की दशा को प्राप्त हो सकता है, जो उस के समान प्रान्दोलन के गुण रखने वाले ग्रहों तथा नक्षत्रों से आ रही हैं। ये रश्मियाँ ऐसे व्यवित से भी आ सकती है, जो आज से दस, बीस, सौ, सहस्र अथवा लाखों वर्ष पूर्व किसी ऐसे प्रकाश-लोक में मर चुका है, जो जीवाणुओं के अति सूक्ष्म प्रभाव-क्षेत्र (field) के साथ एक-तान (harmonised) है, एवं जो अण्ड में प्राणों का संचार करके, अपने निजी स्वभाव, गुण और बौद्धिक विकार उस नव-निर्मित प्राणी को प्रदान कर देता है।" यहां हमें सोच-विचार करने के लिए वहुत सामग्री मिल जाती है। एक महान् विज्ञान-वेत्ता वैज्ञानिक-जगत् के समक्ष यह वाद समुपस्थित करता है, कि गर्भाधान के समय ही मानव-प्राणी दिव्य-लोकों से आवृष्ट हो रही रश्मियों द्वारा एक सांचे में ढल जाता है, और कि जीवित देही का भाग्य, जीव-वैज्ञानिक (biological) दृष्टि से जन्म के साथ ही मुद्राङ्कित हो जाता है।

सूर्य दृश्यमान परमेश्वर के रूप में

वेदों में सूर्य को जगदात्मा के नाम से सम्बोधित किया गया है। वह दृश्यमान परमेश्वर है। सूर्य की उष्णता और प्रकाश के विना संसार में कोई वस्तु एक क्षण के लिए भी रह नहीं सकती। वराहमिहिराचार्य सूर्य को **कालात्मा**, अथवा समय की आत्मा कहते हैं, क्यों कि समय का अस्तित्व सूर्य के कारण ही है। वास्तव में सूर्य ही जीवन-शक्ति का मूल-स्रोत है। सूर्य की शक्ति ही पृथिवी तथा अन्य ग्रहों की मण्डलाकार गति का कारण है। संस्कृत विज्ञान उसे **त्रयी-तनु**, अर्थात् तीन आत्माओं वाला, कहते हैं, क्यों कि भौमिक घटनाओं की उत्पत्ति, परिपालन, और अन्त में विनाश, का कारण उसे ही माना जाता है। भौतिक-सूत्रों में सूर्य के भिन्न भिन्न नाम दिए गए हैं, जिन में से प्रत्येक, विकास की योजना में, उस के काम के किसी न किसी अंग को अभिव्यक्त करता है। उदाहरणार्थ, भौतिकसूत्रों में एक नाम 'मार्तण्ड' दिया है। यह वहुत ही भाव-पूर्ण शब्द है। महर्षि गोभिल कहते हैं कि मार्तण्ड का अर्थ है, प्रलय अथवा नाश के समय जगती को विघटित (अथवा अवसन्न) होने की शक्ति प्रदान करना; और क्यों कि सूर्य इस का कारण है, वही संहार करने का साधन है, अतः उसे 'मार्तण्ड' का नाम दिया गया है। विज्ञान सूर्य में घटित हो रही प्रक्रियाओं के रहस्य निराच्छादित करने की ताक में है। ऐसा प्रतीत होता है, कि इस उधेड़-बुन का उपयुक्त फल 'वैश्व-रश्मियां' जिन्हें कहते हैं, उन के घनिष्ट अध्ययन से ही प्राप्त होगा। वैश्व-रश्मियों (cosmic rays) के रहस्य का ज्ञान स्यात् सूर्य में से

मिलेगा, और तब विज्ञान को यह मानने पर बाधित होना पड़ेगा, कि संसार का वास्तविक भेद सूर्य में निहित है, जैसा कि महर्षि-गण विगत सहस्रों वर्षों से घोषित करते आए हैं। सूर्य को 'सविता' भी कहा गया है। सोम शम्भु, जो भौतिक-सूत्रों के एक टीकाकार हो चुके हैं, यह मत प्रकट करते हैं, कि 'सुवन्ती' एक प्रकार की जीवन-शक्ति होती है, जो प्रकृति के सब पदार्थों से मिल कर जीवन-प्रक्रिया का संचार करती, और उत्पत्ति में सहायता देती है। प्रकृति में समग्र पदार्थ सुवन्ती द्वारा ही चैतन्य, अथवा क्रिया-शीलता, प्राप्त करते हैं, और क्यों कि सूर्य यह गुण अपने में धारण करता है, उसे 'सविता' कहते हैं । हम इस पुस्तक में इस विषय पर विवाद को और बढ़ाना नहीं चाहते।

आकर्षण शक्ति

ग्रह तो केवल सूर्य की ऊर्जा और प्रकाश का प्रतिक्षेप अथवा प्रचारण करने वाले हैं। सूर्य तथा ग्रहों की किरणें—जो रेडियो जैसी तरंगें होती हैं—जीव-वैज्ञानिक और मनो-वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती हैं। यह प्रभाव-कारी रश्मियाँ अदृश्य प्रान्दोलनसे हैं। वे भौतिक-नेत्रों के विषय से परे हैं। मानवदृष्टि (बड़ी ही परिमित क्षमता रखती है; उस) में त्रुटियाँ हैं। यह उन्हीं वस्तुओं को देख सकती है, जो प्रति सेकण्ड् ४८१,०००,०००,००० से लेकर ७६४,०००,०००,००० तक प्रान्दोलन करें। इस लिए प्रभाव-कारी रश्मियों को पहचानने के लिए अन्य इन्द्रियों और साधनों की आवश्यकता पड़ती है। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है,

कि ज्यौतिष-सिद्धान्तानुसार ग्रहों के जो स्वभाव (प्रकृति), तथा गुण माने गए हैं, उन का आधार प्रान्दोलनवाद (vibration theory) है। उदाहरणार्थ, शनि के प्रान्दोलन (अथवा भगण) मन्द हैं, अतः तदनुरूप वस्तुएं ही उस के साथ युक्त की गई हैं। प्रथम अवलोकन समय स्यात् हमारे लिए यह विश्वास करना कठिन हो कि हमारे और नक्षत्रों के मध्य कोई सीधा प्रभाव का आदान प्रदान है। किन्तु हमें यह वात दृष्टि से ओझल न होने देनी चाहिए, कि हमारा विद्युत् द्वारा आकाशस्थ पिण्डों से सम्पर्क वना हुआ है, जिन की रासायनिक वनावट निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। दो पिण्डों के वीच, जैसे सूर्य और पृथिवी के वीच, विद्यमान आकृष्टि-शक्ति (attraction) को गणितद्वारा निकाला जा सकता है। "मान लीजिए '$म_१$' और '$म_२$' दो आकाशवर्त्ती पदार्थों के द्रव्यमान (masses) हैं; 'द', उन का मध्यवर्त्ती अन्तर है, और 'ग', आकृष्टिस्थिरांक (gravitational constant) है, जिस का परिमाण १.०६३×१०^{-९} पौण्डल् है।" सूर्य का द्रव्यमान वा भार १.९×१०^{२७} टन् है; दोनों पदार्थों का मध्यवर्त्तीं अन्तर ९.२४२×१०^{७} मील है। अतः उन के वीच आकर्पण की शक्ति निकली

$$\frac{म_१ \times म_२}{द^२} \times ग$$

$$= \frac{(१.९ \times १०^{२७} \times २२४०)\ (५.८७ \times १०^{२१}) \times १.०६९ \times १०^{-९}}{(८.२८२ \times १०^{७} \times ५२८०)^{२} \times ३२०.१९} = \frac{वि}{भा} = क्ष.$$

अत एव क्ष = ३,४५४,१००,०००,०००,०००,००० टन्। सो इतना है, गुरुत्व उस आकृष्टि शक्ति का, जो सूर्य और पृथिवी

के मध्य विद्यमान है। यह शक्ति, जो एक प्रकार के तनाव अथवा ज्वार-भाटे के कर्म के रूप में है, निरन्तर क्रिया-शील रहती है।

अब मैं कुछ उद्धरण **आर्नॉल्ड् मेयर्** (Arnold Meyer) के लेखों से दूँगा।

[२५] "इन ज्वार-भाटे की शक्तियों द्वारा दिन पर दिन उत्पन्न परिवर्तनों से हम इतना धीरे धीरे अभ्यस्त होते रहते हैं, कि जहां तक सूर्य का सम्बन्ध है, वे स्यात् हमारे ध्यान में भी न आएँ। किन्तु एक बात उन्हें समारे ध्यान में लाती है; वह यह, कि हम कभी कभी, यों समझिए कि, वसन्त के आप्लावों (spring tides) की करनी में 'पकड़े जाते' हैं, जो कि सहसा टेम्ज़् नदी में उच्चाप्लाव के समय हमारे सार्वजनिक भवनों को जलनिमग्न एवं बाढ युक्त कर देते हैं।

"इस का कारण यह है कि जब सूर्य और चन्द्रमा युति (conjunction) की दशा में हों, अर्थात् अमावास्या हो, तो वे दोनों अपनी शक्तियाँ एक ही समय भू-गोल के एक ही भाग पर केन्द्रित कर देते हैं। इन का योग ही असामान्य दशाएँ उत्पन्न करने का कारण है। सामान्य अवस्था में, लन्दन में उच्च आप्लाव सदैव चन्द्रमा के परा काष्ठा (meridian) को अतिक्रान्त कर चुकने के पच्चास मिनट् पश्चात् आता है; इस स्थिति को सूर्य प्रतिदिन मध्याह्न समय (ग्रीनिच् समयानुसार) प्राप्त होता है।

---

[२५] विज्ञान के संसार में ज्यौतिष का स्थान।

"क्यों कि ज्यौतिष का काम विशेषतया **मानव-जाति** पर आकाशीय पदार्थों के प्रभाव की जाँच करना है, अत: यह वात अधिगत करने के लिए किसी विशेष कल्पना-शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती, कि इस प्रकार की अवस्था में उत्पन्न जातक पर निस्सन्देह सूर्य और चन्द्रमा की इस युति का प्रभाव पड़ता है। कारण यह, कि हमारे शरीर में ही अनेक ग्रन्थियाँ हैं, जिन का काम उद्दीपक-स्राव (hormones) उत्पन्न करना है। ये ग्रन्थियाँ हमारे वाह्य वातावरण के रासायनिक-विपर्यय (chemical changes) के संग-संग सदैव अपने आप को अनुवर्तित (adjust) करती रहती हैं, और यही हमारे भावों, इच्छाओं, मानसिक-समतुलन, हमारे वढ़ने की दर और इस ग्रह पर हमारी जीवनावधि के लिए उत्तर दायी हैं।"

सौभाग्यवश, श्री० **आर्नॉल्ड् मेयर्** (Arnold Meyer) कोई 'ज्योतिष्कि' नहीं, प्रत्युत एक वैज्ञानिक हैं, और "वैज्ञानिक अभ्युत्थानार्थ व्रिटिश् समिति" (British Association for the Advancement of Science) के सदस्य हैं, एवं "भौतिक-द्रव्य, विद्युत्कणों और तारों का परिक्रमण" नामक पुस्तक के लेखक हैं। इस लिए हमें उन के वक्तव्यों को कुछ महत्ता देनी पड़ती है।

ग्रह तथा गन्थि स्राव

डॉ० वी० गोरे के मतानुसार,

[२६] "यह कहना सर्वथा वुद्धि-संगत है, कि ग्रहों की

[२६] ज्यौतिप, भाग्य और वैश्व कारक।

दृष्टि से सूर्य और चन्द्रमा की स्थितियाँ, जो समुद्र-जल को प्रभावित करके आप्लाव (tides) उत्पन्न कर देती हैं, वे पृथिवी के तल पर संचित, अथवा वनस्पतियों और मनुष्यों के अन्दर रचे हुए, द्रवों पर भी अपना प्रभाव अवश्य डालती हैं।

"रुधिर केवल एक प्रवाही पदार्थ ही नहीं, अपि तु इस में वही लवण पाए जाते हैं, जो समुद्र में घुले हुए होते हैं, और वह भी लगभग उसी अनुपात में। इस में प्रायः ८० प्रतिशत सोडियम्, चार प्रतिशत कॅल्शियम्, और चार प्रतिशत पोटाशियम् होता है। मेग्नीशियम् की प्रतिशतक मात्रा में कुछ भिन्नता है। रुधिर और समुद्र-जल के अन्दर लवणों के योग में यह सादृश्य आकस्मिक नहीं है। जीवन की उत्पत्ति समुद्र में हुई है, और पृथिवी का आरम्भिक इतिहास समुद्रान्त-जीवन का इतिहास ही तो है। अतः जीवियों मे चन्द्र और सूर्य के प्रभावों के प्रति उसी प्रकार की ग्राहिता (susceptibility) होनी चाहिए।

"हिन्दु ज्योतिषियों ने चान्द्रमास के प्रत्येक दिन के लिए भविष्य-वाणियाँ कर रखी हैं। अष्टमी के विषय में, जब कि सूर्य और चन्द्रमा में ९० अंश का अन्तर होता है, उन्हों ने कह रखा है कि '**अष्टम्यां व्याधि-नाशस्तु**' अथवा '**अष्टमी व्याधि नाशिनी**'। अर्थात् अष्टमी रोग का नाश कर देती है, अथवा व्याधि से आराम देती है। उस दिन सूर्य तथा चाँद, ९० अंश के अन्तर पर होने के कारण, रसों पर एक दूसरे के प्रभाव (आकर्षण) को

घटाते हैं। इस प्रकार उस दिन रुधिर वाह्य-प्रभावों से अपेक्षाकृत वचा रहता है, एवं एक नई औषध, जो ठीक प्रकार चुन कर उस दिन आरम्भ की जाय, वह अवश्य अधिक गुणकारी होगी। यही कारण है, कि इस दिन की इतनी महत्ता मानी गई है। यह व्याधिनाशिनी (अष्टमी) का दिन है।

"क्या यह भोटी वुद्धि की वात नहीं, कि ज्योतिर्विद्या के आवीक्षणों (observations) को शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से प्रयोग में लाया जाय? और यदि ज्योतिषी यह कहते हैं, कि काल विशेष पर ग्रहों का संक्रमण मनुष्यों के विचारों और आचारों को प्रभावित करता है, तथा स्वास्थ्य और जो भी वस्तु कोई महत्व रखती है, उस पर प्रभाव डालता है, तो इस में झूट कहाँ है? ज्यौतिप की हँसी क्यों उड़ाई जाय?"

यदि हमारी क्रियाएँ, शारीरिक भी और मनोवैज्ञानिक भी, ग्रन्थियों के स्रावों द्वारा नियन्त्रित होती हैं, जिन का अपना आधार प्रकृति में घटित होने वाले रासायनिक-परिवर्तन हैं, तो यह निष्कर्ष अनायास ही निकल आता है, कि मनुष्य इन विद्युदुन्मेषों से प्रभावित होता है, क्यों कि रासायनिक परिवर्तन ग्रह-रश्मियों से उत्पन्न होते हैं।

आकृष्टि (gravitation) और ज्वार-भाटे के दृष्टि विन्दु से देखा जाय, तो पृथिवी तथा कुछ एक इतर ग्रहों के मध्य में आकर्षण-शक्तियाँ निम्न प्रकार हैं:—

चन्द्रमा	२०,१८५,०००,०००,०००,००० टन्
वृहस्पति	१३८,९००,०००,०००,००० टन्
शुक्र	१३८,२५०,०००,०००,००० टन्

वड़े नम्र भाव से भी अनुमान लगाया जाय, तो जो ऊर्जा (energy) पृथिवी को सूर्य से प्राप्त होती है, वह १२७,०००,०००,०००,००० घोड़ों के वल के समान है। सूर्य द्वारा प्रचारित ऊर्जा की मात्रा अकल्पनीय है—हमारे ग्रह (पृथिवी) को प्रकाशित तथा तप्त करने, और इस पर जीवित सृष्टि को वनाए रखने, के लिए जितनी ऊर्जा चाहिए, उस से यह मात्रा २,२००,०००,००० गुणा है, और सभी ग्रह और उपग्रह (satellites) आदि मिल कर जितनी ऊर्जा को प्रतिरुद्ध (intersept) करते हैं, उस से भी लाखों गुणा है। दूसरे शब्दों में, यदि सूर्य की ऊर्जा का समस्त प्रदान (output) २,२००,०००,००० इकाइयाँ हो, तो पृथिवी केवल एक इकाई प्राप्त करती है, और सौरोर्जा की यह अत्यन्त (infinitesimally) अल्प मात्रा भी पृथिवी की समस्त आविर्भूतियों के सृजन, परिपालन और संहार का भार अपने स्कन्धों पर उठा सकती है!!! ऐसी है महिमा उस तेजस्वी सूर्य की!! कोई आश्चर्य नहीं, यदि पुराकालीन लोग उसे '**जगच्चक्षु**' और '**कर्मसाक्षी**' कहते थे!

सो, इस प्रकार विदित होगा, कि पृथिवी और ग्रहों में आकर्षण की मात्रा वास्तव में अतीव महती और प्रचण्ड है। अपि च, ग्रहों का अन्तर सूर्य से, तथा एक दूसरे से,

न्यूनाधिक होता रहने के कारण यह निरन्तर घटती बढ़ती भी रहती होगी। फलतः, मनुष्य मात्र पर ग्रहों का प्रभाव पड़ना असंदिग्ध है। जन्म-पत्रिका में सूर्य, चन्द्र और लग्न यथाक्रम मनुष्य की आत्मा, मन और शरीर को व्यक्त करते हैं। सूर्य को विविध-प्राकारिक वैश्व-द्रव्य (cosmic matter) के वितरण-कर्त्ता के रूप में देखा जा सकता है, चन्द्रमा को उस द्रव्य के मिश्रक के रूप में, एवं लग्न को सहायक-कारक (catalytic agent) के रूप में। अन्य ग्रह इन वैश्व-प्रभावों का भावार्थ बताने वाले प्रतीकमात्र हैं। इतना घनिष्ट है सूर्य के संग हमारा सम्बन्ध ! जिस के रासायनिक तत्व वर्णच्छटा-दर्शक (spectroscope) द्वारा न केवल पृथिवी पर हमारे आस-पास पाए जाने वाले तत्वों के **सम-तुल्य** दिखाए जा चुके हैं, वरन् वे हमारे अपने शरीरों के अन्दर पाए गए तत्वों से भी सचमुच **पूर्णतया मिलते** जुलते हैं। और ढंग से कहना हो, तो यों कहिए, कि हमारे अपने गात्रों के चरम-अणु निश्चित रूप से सूर्य का ही अंग हैं।

सौर-लेखाओं के प्रकार

अमेरिका में, और अन्यत्र भी, विज्ञान-वेत्ताओं की साम्प्रतिक खोजों ने यह विदित किया है, कि सूर्य के धब्बे और रश्मियाँ जीव-वैज्ञानिक आचरण (biological behaviour) को निश्चित प्रभावित करते हैं।

सूर्य के धब्बे अथवा रवि-कलङ्क (sun-spots) कई वर्षों तक देखे गए हैं, और उन की संख्या एक नियत समय के

पश्चात् अपने आप को दुहराती है, जिस की माध्यमिक अवधि (average length) ११·१ वर्ष है। **वराह-मिहिराचार्य** ने इस घटना का सम्यक् अध्ययन किया था, जैसा कि उन की प्रसिद्ध 'बृहत् संहिता' से देखा जा सकता है। आज-कल के सुमान्य विद्वान् अन्वेषण के फल-स्वरूप इस परिणाम पर पहुँचे हैं, कि "वर्तमान असाधारण परिवर्तन, जिन्हें हम ऋतु कहते हैं, मुख्यतः सूर्य-रश्मि-समूह में परिवर्तन होने के कारण घटित होते हैं।" पृथिवी के कई स्थलों पर रवि-कलंकों की गरिष्ठता (maximum) के समय लघिष्ठता (minimum) की अपेक्षा अधिक वृष्टि होती देखी गई है। **स्टॅट्सन्** (Stetson) महोदय का कहना है कि:

"ऋतु और जलवायु के पूर्व निरूपण में, डॉ० **ऐब्बट्** (Dr. Abott) का ऐसा विश्वास है, कि २३-वर्षीय कालावधि विशेष रूप से महत्वपूर्ण है; इस समय (१९५२ में) अमेरिका के संयुक्तराज्य (U.S.) पर्याप्त अनावृष्टि-काल की समाप्ति के पास पहुँच रहे हैं, जो उन की ठीक ठीक गणनानुसार, अब १९७५ से पूर्व नहीं लौट सकता। उन्हों ने अपने भविष्य-वाचन का आधार द्विगुणित सौर-कालावधि को माना है, जो कि सौर-क्रिया और ऋतु, दोनों के पुराने आलेख्यों में मिलती है। उन्हों ने इस द्वि-गुणित काल को अधःक्षेपण (अर्थात् किसी वस्तु को एक द्रव अथवा वाति में नीचे बिठाने, (precipitation) के लिए बहुत महत्व-पूर्ण पाया है।"

हम सब ने पाटलोत्तर (ultra-violet) और रक्तपूर्व (infra-red) आदि तेजों के नाम सुन रखे हैं। जो प्रकाश मानव नेत्रों द्वारा देखा जा सकता है, उस के कण होते हैं, और सम्भव है, यह तरङ्ग-गति हो। जो भी हो, यह विभिन्न वेगों से प्रान्दोलन करता है, और हमारे पास भिन्न भिन्न तरङ्गान्तरों (wave-lengths) में आता है, जो वर्णच्छटा (spectrum) के उस भाग के अनुसार होता है, जो हम निरीक्षणार्थ चुनें।

[२७] "दृश्यमान प्रकाश में प्राय ७,७०० अङस्ट्रॉम् इकाइयों (संक्षेपतः 'अ०') के तरङ्गान्तर से लेकर (जो कि लाल पार्श्व की अन्तिम सीमा है), ३,६०० अ० तक के तरङ्गान्तर (जो कि पाटल पार्श्व की सीमा है), पाए जाते हैं। वर्णच्छटा (spectrum) में लाल से परे, जो अधिक लम्बी तरङ्गे हैं, वे हमें दिखाई नहीं देतीं, परन्तु वे ताप-तरङ्गों के रूप में अनुभव की जा सकती हैं एवं रक्त-पूर्व (infra-red) कहलाती हैं। यदि तरंगें ३,६०० अ० से छोटी हों, तो पाटलोत्तर (ultra-violet) क्षेत्र में होती हैं। अपि च, मानव-नेत्र का दृष्टि-क्षेत्र (range) भिन्न भिन्न है, और कई लोग न तो इतनी छोटी तरङ्गें देख सकते हैं, जिन का अन्तर ३,६०० अ० हो, और न इतनी लम्बी, कि जिन का अन्तर ७,७०० अ० हो। विशुद्ध पाटलोत्तर में ३,६०० अ० से लेकर १०० अ० से भी नीचे तक की तरङ्गें होती हैं। अङस्ट्रॉम् 'मीटर्' पद्धति की लम्बाई मापने की एक इकाई है और

---

[२७] ह्यू राइस्, 'अमेरिकन ज्यौतिष, १९४२' में।

१/१०,०००,००० मिल्लीमीटर् के समान होती है। मिल्ली-मीटर् लगभग एक इञ्च् का पच्चीसवां भाग होता है।

पाटलोत्तर रश्मि-पुँज

"सूर्य के अन्दर रक्तपूर्व, दृश्यमान और पाटलोत्तर तीनों प्रकार की रश्मियां होती हैं। किन्तु जहां तक छोटी तरङ्गों वाले पार्श्व का सम्बन्ध है, वातावरण में 'ओज़ोन्' नामक वाति का एक स्तर होता है, जो २,६०० अ० से छोटी सब किरणों को रोक लेता है।

"यह सौभाग्य की बात है कि पाटलोत्तर (ültra-violet) प्रकाश का अधिकांश भाग ('प्रकाश' के स्थान पर रश्मि-समूह कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्यों कि 'प्रकाश' तो दृश्यमान रश्मि-समूह होगा) वातावरण में विद्यमान ओज़ोन् (ozone) के पतले से स्तर के भीतर विलीन हो जाता है, जो भूतल से लगभग पच्चीस मील ऊपर होता है। कारण यह, कि यदि ओज़ोन् द्वारा संरक्षण न मिलता, तो प्राणियों और वनस्पतियों को अकथनीय हानि पहुँचती। हाँ, यदि वे इस प्रकाश की बहुत अधिक मात्रा को सहन करने के अभ्यस्त हो जाएँ, तो स्यात् ऐसा न हो। वर्तमान वस्तु-स्थिति में, हम कह सकते हैं कि पाटलोत्तर (ultra-violet) प्रकाश की 'ठीक-पर्याप्त' मात्रा हमें स्वस्थ रखने के लिए छन कर आती है, और कोई वास्तविक हानि नहीं पहुँचाती। आखों को हानि वे रश्मियाँ पहुँचाती हैं, जो ३,०५० अ० से छोटी हो;

त्वचा पर जिन का प्रभाव अधिकतम होता है, वे २,९०० से ३,१३० अ० तक की होती हैं; एवं इन के गुणकारी प्रभाव विटामिन् डी (vitamin D) के उत्पादन के साथ सम्बन्ध रखते हैं। त्वचा का घन (श्याम) वर्ण की हो जाना प्रकृति का एक साधन है, जिस के द्वारा वह मानव-जाति को पाटलोत्तर (ultra-violet) रश्मियों के आधिक्य से बचाती है, क्यों कि त्वचा के श्याम-वर्ण हो जाने से रश्मियाँ उस में सोस (शोषित, absorb) हो जाती हैं, और ताप-रश्मियों में परिणत हो जाने के कारण, छन कर भीतर जा नहीं पातीं। कुछ विशेष पाटलोत्तर किरणे (ultra-violet rays) निश्चय ही कीटाणु-नाशक हैं, विशेषतया वे जो २,३८० से २,४९० अ० तक की लम्बाई की हों। कीटाणुओं के लिए तो ये सचमुच संहार् किरणें हैं।"

प्रश्न यह है, कि क्या सूर्य-कलंकों (sun-spots) के आवर्तन से पाटलोत्तर रश्मियों की मात्रा में कोई परिवर्तन होता है? ज्योति-र्विज्ञों (Astronomers) ने पता लगाया है, कि यह परिवर्तन होता है, और कभी कभी तो ३० प्रतिशत तक होता है। सूर्य-कलंकों (sun-spots) के बढ़ने से, एक निम्नाङ्क आता है। वहाँ तो इन दोनों में थोड़ा बहुत सम्बन्ध अवश्य है। हम यह निष्कर्ष नहीं निकालते, कि पाटलोत्तर (ultra-violet) प्रकाश सीधा सूर्य-कलंकों से आता है। किन्तु, जैसे कि स्टॅट्सन् (Stetson) महोदय कहते हैं,

"यह सर्वथा सम्भव प्रतीत होता है, कि जैसे परि-वर्तन सूर्य में होते हैं—वे परिवर्तन, जो सूर्य के अन्दर अधिक-

मात्रा में पाटलोत्तर प्रकाश उत्पन्न होने का फल हैं—सूर्य के वातावरण को इतना संक्षुब्ध कर देते हैं, कि धब्बों का उन के साथ उत्पन्न हो जाना प्राकृतिक सा हो जाता है।"

[२८] "अद्भिज्ज सृष्टि एक और फल है, जिस का मूल कारण सूर्य सिद्ध किया जा सकता है। अरिज़ोना (Arizona) विश्वविद्यालय के **डग्लास्** (Douglass) महोदय ने विशेष रूप से कई वर्षों तक वृक्षों की गांठों पर जो चक्र अथवा कुण्डलियां होती हैं, उन का अध्ययन किया है। इन वृक्ष-कुण्डलों की चित्राकृति (pattern), जिस में दो चक्रों के बीच का अन्तर कही थोड़ा होता है और कहीं बहुत, वृक्ष के परिवर्द्धित होने के समय जल-वायु की दशा को सूचित करती है। इस विधि से गत ३,२०० वर्षों की ऋतु-परिस्थितियों का पता लगाया जा सकता है। वृक्षों पर वृष्टि और अनावृष्टि का प्रभाव पड़ता है; अतः सूर्य-कलंकों की दशाएँ वर्षा और अनावृष्टि के साथ सम्बद्ध होती हैं। जहां कुण्डल पास-पास हों, उस समय पर सूखी ऋतु का अनुमान किया जाना चाहिए; इसी प्रकार, जहां उन में अन्तर अधिक हो, प्रचुर वर्षा का काल समझना चाहिए। इस विषय में सब अन्वेषकों का एक मत नहीं, कि कुण्डलों वा गांठों को देख कर वृक्ष के बढ़ने का जो अनुमान लगाया गया है, उस का सूर्य-कलंकों के साथ कोई सम्बन्ध है। तथापि **डग्लास्** (Douglass) द्वारा **प्रदत्त-तथ्यों** (data) के आधार पर यह अवलोकन करना कठिन

---

[२८] तत्रैव।

नहीं, कि वे सूर्य-कलंकों के आधिक्य के वर्षों में वृक्षों का अधिक वढ़ना प्रदर्शित करते हैं।

"प्रकाश की मात्रा और प्रकार का पौधों पर मुख्यतः तीन प्रकार का प्रभाव पड़ता है।

(अ) प्रकाश की तीव्रता उचित अंश की होनी चाहिए ; पत्र-हरित् (chlorophyll), अर्थात् वनस्पतिओं के पत्रादि का हरा वर्ण, वनने के लिए पर्याप्त धूप मिलनी चाहिए। किन्तु अति-तीव्र प्रकाश विनाशकारी है।

(इ) पौधे का विकास कुछ न कुछ इस वात पर भी निर्भर है, कि वह प्रति-दिन कितने घण्टे धूप में रहता है ; क्यों कि भिन्न भिन्न प्रकार के पौधे धूप में भिन्न भिन्न चिर-काल तक रहना ही सहन कर सकते हैं।

(उ) प्रकाश के तरङ्गान्तर (wave-length) अथवा वर्ण का वहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। कुछ एक को वढ़ने के लिए वर्णच्छटा के दीर्घ सिरे की आवश्यकता है। यह वड़ा जटिल विपय है, किन्तु एक न एक दिन हम इस के सम्वन्ध में वहुत कुछ जान जाएँगे। यदि सूर्य के अन्दर हिलचल होने से धूप के गुणों में परिवर्तन आ जाता है, तो कुछ पौधों का परि-वर्द्धन तो अवश्य तदनुसार परिवर्तित हो जाना चाहिए। सूर्य का प्रकाश किस भान्ति का है,

यह बात बहुत महत्वपूर्ण मानी गई है।
(स्थूल मुद्रित पङ्क्तियाँ हमारी हैं।

रोहिणी योग

"कई अच्छे वैज्ञानिक यह समझते हैं, कि इस कथन में कोई सार नहीं, कि व्यापार, हस्त कला, उद्योग-धन्धों आदि का सूर्य की दशाओं के साथ कोई सम्वन्ध है। दूसरी ओर, कतिपय ख्यात-नामा वैज्ञानिकों ने इन में धनात्मक (positive) सम्वद्धता पाई है। येल् के **प्रोफ़ॅस्सर् हण्टिङ्टन्** जो संसार के प्रमुख भूगोलवेत्ताओं में से एक हैं, यह मानते हैं कि सौर-परिवर्तन मनुष्य के स्वास्थ्य और आचरण को प्रभावित करते हैं। **स्टॅट्सन्** महोदय ने विदित किया है, कि व्यापारिक कार्य, स्वचल-गन्त्रों (automobiles) का उत्पादन, भवन-निर्माण के ठेके, और इस प्रकार की अन्य वस्तुएँ पिछले कतिपय वर्षों में रवि-कलंकों (sun-spots) के उतार-चढ़ाव के ठीक अनुसार घटती-वढ़ती रही हैं। उन का विश्वास है, कि यह मत, कि रवि-कलंक व्यापार पर प्रभाव डालते है, उत्तरोत्तर सिद्ध होता जा रहा है, एवं अधिक अन्वेषणों द्वारा इस विचार की पुष्टि ही होनी चाहिए।"

वराह-मिहिर ने, जो एक महान् भारतीय ज्योतिर्विद् हो चुके हैं, कुछ पौधों की प्रचुर वृद्धि के आधार पर वर्षा होने की भविष्य-वाणी करने के महत्वपूर्ण नियम दिए हैं। उन के अवलोकन का क्षेत्र कितना विस्तीर्ण होगा, इस का परिचय उस समय मिलता है, जव हम वनस्पति-जगत् पर वर्षा का

प्रभाव, एवं तद्विपरीत क्रम (*vice versa*) ध्यानाधीन लाएँ। ज्यौतिप की दृष्टि से, जब सूर्य, चन्द्र और ग्रहगण विभिन्न राशियों में प्रवेश करते हैं, तो उन के अपने अपने तेजों में भिन्नता आती है, जिस से वे ऋतु में तदनुसारी परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। रोहिणी, स्वाति और आपाढा योग, जिन का वर्णन वराह-मिहिर ने इतने विस्तार के साथ किया है, तीनों ही वर्प भर की ऋतु-दशा का पहिले से निरूपण कर देने के लिए मूलाधार हैं। चान्द्र आपाढ मास में, जब कि चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश करता है, तो जो योग बनता है, उसे **रोहिणी योग** कहते हैं। यह इतनी महत्वपूर्ण दैवी-घटना है, कि आगामी चार मासों के लिए ऋतु की प्रवृत्तियाँ इस से जानी जा सकती हैं। वर्ष के केवल एक दिन में प्राप्त ऋतु-सम्बन्धी सूचनाएँ लेकर हिन्दुओं ने देश के भावी कृपि-फल का निर्णय करने के लिए उन्हें इतनी लम्बी-चौड़ी गणना का विषय बनाया ; और इधर, अनुभव से विहीन पश्चिम के एक विज्ञान-वेत्ता को वह दिन वैसा ही नगण्य, अथवा गण्य, प्रतीत होता है, जैसा वर्प का कोई और दिन। यह तथ्य प्रमाण है, कि प्राकृतिक नियमों के अन्वेपण में आधुनिक विज्ञान अभी बहुत पीछे है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक **अर्रेनियस्** (Arrhenius) ने कहा था कि पवन की संचारण-शक्ति अथवा संचारिता (conductivity) २७·३२ दिन के चक्र से घटती-बढ़ती है, जो चन्द्रमा के एक अयनानुवर्त्ती (tropical) परिक्रमण-काल के समान है ; एवं उन्हों ने यह ध्वनित किया था, कि वायु-मंडलीय विद्युत् के ये परिवर्तन स्यात् उत्पत्ति-संख्या, मृगी के आक्रमण, और अन्य तद्वत् परिवर्त्तन-शील घटनाओं

की आवृत्ति के साथ असम्वद्ध नहीं हैं। स्वर्गीय डा० ए० जे० **पियर्स** (Dr. A. J. Pearce), जो स्वर्गीय **प्रोफ़ॅस्सर् वी० सूर्यनारायण राव** के समकालीन और मित्र थे, ज्यौतिष पर अवलम्वित कई एक भविष्य-वाणियाँ ऋतु-दशा के सम्वन्ध में कर गए हैं, जो वहुत ठीक सिद्ध हुई हैं, एवं उन के लिए यशः का साधन वनी हैं।

पाठकों को पता है कि हिन्दुओं ने ग्रहण से कुछ घण्टे पूर्व, तथा लगने के समस्त काम पर्यन्त, भोजनादि के विषय में कुछ प्रतिवन्ध लगा रखे हैं। कारण यह, कि वहुत से ज्योतिःकण, जो एक सौ मील प्रति सैकण्ड की गति के साथ सूर्य से धाराप्रवाह निकल रहे होते हैं, चाँद से रुक जाएँगे, और एक प्रकार की 'कणों की छाया' सी वन जायगी; पृथिवी पर कणों की इस छाया का प्रभाव 'प्रकाश की छाया' के पहुँचने से कुछ घण्टे पूर्व ही अनुभव हो जायगा। रेडियो-संकेतों (radio-signals) के विषय में की गई साम्प्रतिक खोजों से पता चला है, कि 'कणों के ग्रहण' (corpulscular eclipse) के समय वाही-क़रण की घनता (ionisation density) अपेक्षाकृत घट जाती है। और यह अवस्था एक दिन पहिले, अथवा एक दिन पीछे, दिखाई नहीं देती। अतः यह सम्भव है, कि रवि-कलंकों की प्रक्रिया के समय जो वैद्युत-संक्षोभ (electrical disturbances) घटित होते हैं, उन का हमारी शिराओं तथा मस्तिष्क के कोशाओं के कोमल तन्तुओं पर प्रभाव पड़ता हो, जिस के कारण हमारे स्वभाव और आचरण में परिवर्तन आ जाएँ।

ग्रह तथा वनस्पति जीवन

भारत के ग्रामीणों में, यह प्राचीन विश्वास अभी तक पाया जाता है, कि अमावास्या के लगभग वृक्षों का छेदन नहीं करना चाहिए, क्यों कि उस समय रस शीघ्र शोषित हो जाता है। यह डॉ० एल्० कोलिस्को (Dr. L. Kolisko) ने दिखा दिया है, कि चन्द्रमा का प्रभाव पौधों पर भी पड़ता है। इन भद्र महिला ने नौ वर्ष तक प्रयोग कर के दिखाया है, कि गोधूम की सब से अच्छी खेती कर्क-संक्रान्ति के पश्चात् चन्द्रमा जब पहली बार चढ़ती कलाओं में हो, उस समय होती है, और "मक्की की खेती तब अच्छी होती है, यदि उसे पूर्णिमा के दो दिन पूर्व बोया जाय।" अन्य वनस्पतियों पर किए गए प्रयोगों ने भी उन्हें कुछ कुछ इसी प्रकार की अनुसारिता (correspondence) दिखाई, और इस प्रकार ज्यौतिष के इस मत को सिद्ध किया, कि उद्भिद् सृष्टि पर ग्रहों का प्रभाव पड़ता है।

स्वर्ण का सदैव सूर्य के साथ सम्बन्ध रहा है। वास्तव में सूर्य के अनेकों नामों में से एक 'हिरण्य-गर्भ' है। डॉ० कोलिस्को ने तो ग्रहों का प्रभाव धातुओं पर भी दिखला दिया है। उन के प्रयोग निम्न-प्रकार से थे।

> [२१] "एक १ प्रतिशत घोल उस धातु अथवा धातुओं के लवणों का, जिन का अध्ययन करना था, लेकर एक खुले बर्तन में रखा, एवं निस्यंदन-पत्र (filter-paper) का

---

[२१] रुपर्ट ग्लीडो कृत "दैनिक जीवन में ज्यौतिप"।

एक बेलन सा बना कर उस में रख छोड़ा, जब तक कि कैशिक-आकर्षण (capillary attraction) द्वारा सब घोल उस ने चूस नहीं लिया। इस प्रकार निस्यंदन-पत्र पर एक 'चित्र'-सा बन गया, जो यह दिखाता था, कि प्रत्येक घोल के अपने अपने विशिष्ट रूप और वर्ण होते हैं। स्वर्ण के क्लोराइड् नामक यौगिक ने अनवरत एकही रूप और एकही आह्लादजनक पीतवर्ण दिखाया, केवल सूर्यग्रहण के समय को छोड़ कर, जब कि आकृतियाँ बिगड़ गई थी, और वर्ण नील-लोहित हो गया था।"[३०] (अधिक विस्तार के लिए **श्रीमती कोलिस्को** की पुस्तक "कल का कृषि-विज्ञान" पढ़ी जा सकती है।)

ग्रहण जन मारी-रोगों पर भी प्रभाव डालते हैं, यह बात निर्विवाद है।[३१] "कीटानुवाद, जिस पर आधुनिक भिषजों ने इतना आडम्बर खड़ा कर रखा हैं, रोग के कारणों के विषय में एक कल्पना ही है, जिन के होने न होने का कोई साक्ष्य नहीं। एतद्विपरीत, ज्वाला-मुखी पहाड़ों का फटना और भूचालों का आना इतनी बार जनमारी रोगों के कूट पड़ने के संग-संग घटित होता है, कि ग्रहों की क्रिया ही इन सब घटनाओं का मूलकारण है, इसी मत का पक्ष पुष्ट होता प्रतीत होता है—पट्ठों की शक्ति झटिति-पटिति अत्यन्त क्षीण हो जाना, जो कि एक बहुत पहले व्यक्त होने वाला लक्षण है, एवं साथ साथ अतीव क्लेशदायक शिरोवेदना, दोनों यही संकेत करते हैं, कि वैद्युत

[३०] तत्रैव।

[३१] 'ज्यौतिष की पाठ्य-पुस्तक', 'लेखक, डा० ए० जे० पियर्स।

परिवर्तन प्रतिश्याय (influenza) रोग के साथ घनिष्ट रूप से संवद्ध हैं; एवं वातावरण की वैद्युत-अवस्था में इन परिवर्तनों का कारण ग्रहों की क्रिया है।"

सूक्ष्म-जीव और वैद्युत खिचाव

[३२] "**प्रोफ़ॅस्सर् चिजेव्स्की** (Professor Tchijevsky) इस परिणाम पर पहुँचे हैं, कि जलदोष अथवा प्रतिश्याय (influenza) को जनमारी का मध्यम आवृत्ति-काल लगभग ११·३ वर्ष है, जो कि रवि-कलंकों के आवृत्ति-काल के समान है। और अन्य वातों के साथ साथ, उन्हों ने यह भी खोज की है, कि प्रत्येक वार सूर्य-कलंकों के गरिष्ठता को प्राप्त होने के प्राय तीन वर्ष पश्चात् जल-दोष जनमारी की प्रथम लहर चलने की आशंका करनी चाहिए।"

अपने अन्वेषणों के वल पर वे इस योग्य हुए, कि १९३० में ही १९३६ की जलदोष जनमारी के विषय में भविष्य-वाणी कर सके। वराह-मिहिराचार्य ने अपनी '**वृहत् संहिता**' में जनमारियों और महामारी (epidemics and plague) के ज्यौतिषीय कारणों की चर्चा की है; एवं इस का यह स्पष्ट अर्थ निकलता है, कि कुछ विशेष आकाशीय घटनाओं तथा रोगों के विभिन्न प्रकारों में अवश्य पारस्पारिक अनुसारिता (correspondence) है। ऐसा दिखाई देता है, कि मानो प्राचीन ज्यौतिषीय सिद्धान्तों की केवल पुष्टि ही की गई है रूसी प्रोफ़ॅस्सर **चिजेव्स्की** के अनुसन्धानों

---

[३२] रूपर्ट ग्लैडो कृत 'दैनिक जीवन में ज्यौतिष'।

द्वारा, जो कई वर्ष तक चलते रहे, और जिन पर काम करते समय उन्हों ने १५ वीं शताब्दी से लेकर उस समय तक की सभी मुख्य मुख्य जनमारियों और महामारियों को अपने ध्यान में रखा। उन के निष्कर्ष ये हैं:—

(अ) जनमारियों, जैसे जलदोष (influenza), का मध्यम आवृत्ति काल ११·३ वर्ष है—अर्थात् वही, जो सूर्य-कलंकों का है।

(इ) जनमारी की प्रथम लहर सामान्यतः जब जब सूर्य-कलंकों की गरिष्ठता हो, उस के प्राय तीन वर्ष पश्चात् आती है।

(उ) और सूक्ष्म-जीवों की प्रचण्डता (virulence) उसी अनुपात से बढ़ती है, जिस से कि वातावरण की विद्युत् का खिचाव।"

ठीक जलदोष की भान्ति, मसूरिका, महामारी, विषूचिका, तथा अन्य जनमारियों के अतिरेक के समयों का भी सूर्य-कलंकों और अन्य पुनःपुनरावर्तमान घटनाओं (periodicities) के साथ किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध है। मसूरिका की पुनरावृत्ति (periodicity) के विषय में हम निम्नलिखित उद्धरण **डॉ० जॉन् ब्राउन्बी** (Dr. John Brownbe) के पत्र से पाठकों की सेवा में समुपस्थित करते हैं।

[३३] "जिन निष्कर्षों का आधार इस अनुसन्धान द्वारा प्राप्त परिणाम हैं, वे हमारे ज्ञान की वर्तमान अवस्था

---

[३३] 'फ़िलॉसॉफ़िकल् ट्रान्सॉक्षन्ज़् ऑव् रॉयल् सोसाइटी', २०८.

में पूर्णरूप से सूत्रवद्ध नहीं किए जा सकते। जो विभिन्न कारक (factors) इस में क्रियाशील रहे हैं, उन की सापेक्ष महत्ता ठीक ठीक माप सकने से पूर्व वहुत सा आरम्भिक कार्य करना होगा। तथापि इतनी वात तो सिद्ध ही प्रतीत होती है, कि मसूरिका में वड़े प्रकोप के साथ वार-वार नियत कालान्तर के पश्चात् आक्रमण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है, जो प्राय अनेकों वर्षों तक चलती रहती है। आवृत्ति के कालान्तर में कई प्रकार की भिन्नता पाई गई है; सव से अल्पतम एक वर्ष का कालान्तर पैरिस में पाया गया है, और सव से दीर्घतम तीन वर्ष का डण्डी, स्कॉट्लॅण्ड्, में। इन घटनाओं का जीवशास्त्रावलम्वी निरूपण (biological explanation) के अतिरिक्त और कोई निरूपण उपयुक्त वा समीचीन नहीं जचता। एवं तथ्य इस वात को भी प्रमाणित करते दीख पड़ते हैं, कि (रोगों की) यह पुनरावृत्ति (periodicity) रोगी की ग्राहक-वृत्ति (susceptibility) की सामयिक न्यूनाधिकता पर निर्भर होने की अपेक्षा, नितान्ताधिक सम्भवतः उन परिवर्तनों के कारण घटित होती है, जिन के द्वारा अनायास ही स्यात् आक्रमण-कारी जीव का जीवन चक्र वन जाता हो। ....यह वात, कि मसूरिका के कीटाणुओं की पूरी जीवन-चर्या **सौर वर्षों की प्राय पूर्ण-संख्या के ठीक समान होती है**, (स्थूल मुद्रित शव्द हमारे हैं), कोई असाधारण नहीं, और यह स्वयमेव वड़ा ध्वनिपूर्ण संयोग है; किन्तु यदि यह मान भी लिया जाय, कि यह

एक आकस्मिक संयोग मात्र है, तो भी इस विषय में अधिक विश्लेषण की आवश्यकता बनी रहती है।"

यहां हमें ज्यौतिष के शिक्षार्थी होते हुए, जिस बात में सर्वतोऽधिक रुचि है, वह है मसूरिका के कीटाणु की जीवन-चर्या तथा सौर-वर्षों की पूर्ण-संख्या में '**ध्वनिपूर्ण संयोग**' (suggestive coincidence)। 'संयोग' शब्द या तो वास्तविक तथ्यों के विषय में अपना अज्ञान छिपाने के लिए आच्छादक के रूप में प्रयुक्त किया गया है, और या विशेष घटनाओं के वास्तविक कारण को जान बूझ कर **उपेक्षित** करने की इच्छा से बरता गया है। जिन वर्षों में किसी विशेष जनमारी (epidemic) द्वारा मृत्यु-संख्या अधिकतम रही हो, उन का संनिपात (coincidence) यदि बारम्बार सूर्योर्जा (solar energy) के विशेष प्राकारिक परिवर्तनों के साथ हो, (जिन का अपना मूल कारण ग्रह-गतियों का सूर्यकी अपेक्षा से, एवं एक दूसरे की अपेक्षा से, न्यूनाधिक होना है), तो हम निश्शंक कह सकते हैं, कि किसी न किसी प्रकार का नियम अवश्य विद्यमान है, जिस के द्वारा यह पहले से अनुमान लगाया जा सकता है, कि जनमारी का पुनराक्रमण कब होगा। यही है ज्यौतिष, शुद्ध और सरल।

ज्यौतिष के विद्यार्थी जानते हैं कि मसूरिका, शीतला, इत्यादि रोग मंगल ग्रह के साथ सम्बन्ध रखते हैं। मंगल का सायन वर्ष (Tropical year) १.८८ वर्ष का होता है, जो कि उसके मध्यम भूमि-नीच (mean average perigee) का कालान्तर है। जब कभी मंगल भूमि के निकटतम आ जाता

है, तो 'मंगल-जन्य जनमारियाँ प्रकट होनी चाहिएँ।' डॉ० फ़उरे और डॉ० सार्दू (Dr. Faure and Dr. Sardou) ने खोज की है, कि जव जव रवि-कलंक सूर्य के याम्योत्तर वृत्त (meridian) को अतिक्रान्त करते हैं, तो सौ में से चौरासी अवसर ऐसे होते हैं, कि जव उन डॉक्टरों के रोगियों की दशा विगड़ी होती है। रवि-कलंकों की गरिष्ठता वृहस्पती के भगन काल के भी प्राय सम है, क्यों कि वृहस्पति लगभग वारह वर्प में नभो-मण्डल का एक चक्र पूरा करता है। इस से यह भी ध्वनित हो सकता है, कि रवि-लाञ्छन (sun-spots) वृहस्पति के आकर्षण से उत्पन्न होते हैं, जैसा कि जनमारियों की पुनरावृत्ति से भी स्पष्ट ही है। सितम्वर, १८८० में वृहस्पति रविनीच (perihelion) पर था (अर्थात् सूर्य के निकटतम था); सो १८८१ और १८८३ में रवि-कलंकों (sun-spots) की गरिष्ठता (maximum) के समय मेरुदण्ड-वेदना (spinal meningitis) का अधिकतम प्रकोप रहा। पुनश्च, वही व्याधि संयुक्त राज्य, अमेरिका (U.S.A.) में १८९२ में परम अतिरेक को प्राप्त हुई (वृहस्पति सूर्य-नीच पर—जुलाई, १८९२, रवि-कलंकों की गोष्ठिता १८९३); उस का पुनः आविर्भाव १९०४-५ में हुआ (वृहस्पति सूर्य-नीच पर—जून्, १९०४ रवि-कलंकों की गरिष्ठता १९०५) एवं तत्पश्चात् १९१७-१८ में (वृहस्पति सूर्य-नीच पर—अप्रैल, १९१६ और रवि-कलंकों गरिष्ठता १९१७)।

ग्रह तथा रेडियोप्रतिग्रहण

रेडियो कॉर्पोरेशन् आँव् अमॅरिका (RCA) सन्देश-वाहनासंस्था के इञ्जिनीयरिङ्ग विभाग के श्री० **जान् हॅन्री नॅल्सन्** (John Henry Nelson) के मतानुसार, जिस का उल्लेख **सिड्नी ओमर्** (Sydney Omarr) ने किया है,[३४]

> "चौम्बिक प्रभंजन (storms) ठीक उस उस समय आते हैं, जब ग्रहों में परस्पर ०°, ९०° अथवा १८०° के अन्तर हो। चौम्बिक प्रभञ्जनों का छोटी-तरङ्ग वाले वितार सन्देशों के प्रतिग्रहण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है; एवं चौम्बिक संक्षोभों (magnetic disturbances) से मुक्त होने की केवल उन समयों से सम्भावना हो सकती है, जब कि शनि, बृहस्पति और मंगल सूर्य से समानान्तर हों, अथवा जब वे एक दूसरे के साथ साठ अथवा १२० अंशों के कोण बनाएँ (अर्थात् जब उन में परस्पर गुप्त-मैत्री दृष्टि, वा मित्र-दृष्टि, हो)।"

पैरिस् के **एफ्० चैपल्** (F. Chapel), जो कि फ्रेंच सेना के एक भूतपूर्व जनरल् हैं, तीस वर्ष तक पारि-सांख्यानिक अनुसन्धान (statistical research) करने के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि लघु-ग्रहों (asteroids) तथा उल्कात्मक अवस्थिति (meteorological conditions) का उन अग्नि-काण्डों तथा विस्फोटनों के साथ सम्बन्ध है, जो बार

---

[३४] जन्म-पत्र, न्यू यॉर्क।

वार घटित होते हैं, एवं जिन को कोई युक्तिसंगत निराकरण हो नही पाया।

प्रख्यात स्वीडिश् वैज्ञानिक **सेवॅण्टी अर॑नियस्** (Sevente Arrhenius) ने पारिसांख्यानिक (statistical) अन्वेषणों के आधार पर, जिन में २५,००० उदाहरणों का निरीक्षण किया गया था, यह सिद्ध किया था, कि मनुष्यों की जन्म-संख्या, तथा रविमार्ग में चन्द्रमा के परिभ्रमण, में सहचर्य्य है।

यदि सच पूछा जाय, तो उन्हों ने यह दिखा दिया है कि अधिकांश स्त्रियों को मासिक-धर्म चन्द्र मास की एक निश्चित तिथि को होता है। यदि व्यक्तिगत रूप में देखा जाय, तो मासिक-धर्म प्राय उस समय होता है, जव चन्द्रमा जन्म-पत्री में दिए हुए एक स्थिर विन्दु-विशेप पर पहुँच जाय। वराह-मिहिराचार्य ने 'वृहज् जातक' में स्पष्ट कहा है, कि स्त्री को प्रति मास रजोदर्शन उस समय होता है, जव चन्द्रमा लग्न से 'उपचय' में होता है, एवं च रजःस्राव मङ्गल तथा चन्द्रमा की परस्पर प्रतिक्रिया के कारण होता है।

जल-वायु के प्रभाव

जल-वायु का नियन्त्रण ग्रहों की गतियों तथा प्रभावों द्वारा होता है। फलतः जलवायु के प्रभाव (मनुष्यों पर) स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। यदि मनुष्य के शारीरिक-विन्यास और चित्तवृत्तियों में कोई ऐसा कारक (अथवा साधक, factor) है, जो उसे कर्मण्यता वा आलस्य, वलवत्ता वा निर्वलता, एवं प्रखरता वा मन्दता, की ओर प्रभावित करता है, तो वह जल-

वायु है। ये उदाहरण ध्वनित करते हैं, कि विविध वातावरणिक प्रभावों, और मानव-नाड़ियों की जीवन क्रिया, में कोई सम्बन्ध है, जिस का निरूपण इदानीं पर्यन्त हमारे ज्ञात विज्ञान नहीं कर पाए, किन्तु जिस का प्रभाव प्राय इतना विशद रूप से अनुभव होता है, कि उस की सत्ता को न तो झुठलाया जा सकता है, और न उस में सन्देह किया जा सकता है। संसार के महत्तम भिषजों ने सर्व प्रथम जल-वायु परिवर्तन को चिकित्सा का एक प्रवल साधन माना है। मनुष्य के स्वास्थ्य पर समुद्र-समीर का अतीव गुणकारी प्रभाव उस की विशुद्धता के कारण से है। वाह्य धूलि-कण, जो जनाकीर्ण नगरों के वन्द वातावरण को दूषित कर देते हैं, और उसे रोग और मृत्यु के उत्तप्त-क्षेत्रों में परिणत कर देते हैं, वे विशुद्ध पवन के उन रम्य झोंकों में नहीं होते, जो जल के विशाल तल के ऊपर से वह कर आते हैं। और यह तथ्य जल-वायु को अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद वना देता है। जल-वाष्प अथवा (वायु की) आर्द्रता वातावरण की शीतोष्णता को सम करती है, और श्वास-नाली की उत्काश आदि व्याधियों के भीषण आक्रमणों से सुरक्षा करती है। सलवण-कणों, आयोडीन्, ओज़ोन् एवं विशिष्ट वैद्युत और चौम्बिक अवस्थितियों के प्रभाव भी अपने लाभदायक गुण दिखाते हैं।

सिन्सिनाटी विश्वविद्यालय के प्रायौगिक ओषधि विद्या के प्राध्यापक, **डॉक्टर् क्लॅरॅन्स् ए० मिल्ज़्** (Dr. Clarence A. Mills) ने पता लगाया है कि प्रतीच्यों और पाश्चात्यों की जीवन-शक्ति में जो अन्तर पाया जाता है, वह "खाद्यों की पौष्टिकता, जाति, अथवा संस्कृति-भेद के कारण नहीं वरन्

जल-वायु की भिन्नता के कारण है।" "मनुष्य की जीवन-शक्ति का उतार-चढ़ाव जल-वायु के परिवर्तन के साथ होता है; शरद्-ऋतु के प्रारोचक काल में मनुष्य का वल वढ़ता रहता है, और क्षीणकारी निश्चल ग्रीष्म-ऋतु के संग संग यह अवनत होता रहता है।" जब वायु का भार-मान (barometric pressure) । [३५] "धीरे धीरे वढ़ता है, तो मानव-क्रियाशीलता अपनी अतिभूमि पर होती है; मध्यम अंश की कार्यकुशलता उस समय होती है, जव भार-मान किसी अंश पर स्थिर होता है; और निकृष्टतम कार्य-वृत्ति भार-मान के पतन के संग संग चलती है। शरीर और मस्तिष्क के कोशा (cells), जो सुषिरदेह (sponge) की भान्ति छिद्र-पूर्ण होते हैं, वाहरी दवाव के घटने से पानी को चूस लेते हैं, और फूल जाते हैं। इस चूषण और स्फारण (स्फीति) (swelling) के साथ साथ कार्य-कुशलता में गड़वड़ हो जाती है, और शरीर का सामान्य जल-सन्तोल (water-balance) विगड़ जाता है। दूसरी ओर, जव वाहरी दवाव वढ़ता है, तो शरीर और मस्तिष्क के कोशारिक्त हो जाते हैं, और कार्य-क्षमता वढ़ जाती है।" किसी प्रभञ्जन (storm) के शीघ्र पश्चात् जीवित जन्तुओं में परिवर्द्धित नाडी-कर्पण (nervous tension) अथवा नाड़ियों के खिचाव, के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। पशु निरङ्कुश और असाध्य हो जाते हैं, वच्चे चञ्चल और वक्रवृत्ति हो उठते हैं, एवं प्रौढ़ जन क्रोधी और झगड़ालु वन जाते हैं। अल्प भारमान, अथवा दवाव, झंझावात वाले दिनों में कई

---

[३५] 'अमेरिकन् ज्यौतिष, १९४२' में ऍफ़्० ए० ऍकवॅन्।

प्रत्यक्ष शारीरिक परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं। क्यों कि कई शरीरों में पानी की मात्रा अधिक हो जाती है, सो उन का भार एक दिन में चार-चार पाँच-पाँच पौण्ड् बढ़ जाता है, और हो सकता है कि टाँगों की स्फीति (spread) अथवा जंघाओं की परिधि भी बढ़ जाय। मस्तिष्क के कोशाणु (cells) फैल नहीं पाते, क्यों कि वे एक कठोर मंजूषा के अन्दर बन्द हैं। इस लिए दबाव घट जाता है, और परिणाम स्वरूप उदरान्त्रों के भाग (gastro-intestinal tract) से जल-वाष्प ली जाने के कारण चिड़चिड़ापन, चिन्तातुरता, अशान्ति और स्वभाव की आतुरता उत्पन्न हो जाती है। अति हो जाने की दशा में, यदि मस्तिष्क-कोशाणु जल से इतनी अति क्लिन्न (water-logged) हो जाएँ, कि प्राण-वायु का उपपादन बन्द हो जाय, तो मूर्छा अथवा अचेतनता भी आ सकती है।"

अमेरिका के डॉ० मिल्स् (Dr. Mills) के अनु-सन्धानों ने निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है, कि जल-वायु की दशाओं का मनुष्य के परिवर्धन, जीवन-शक्ति, जनन-क्षमता, अपराध-वृत्ति, समृद्धि, स्वास्थ्य और सिद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

पंचम प्रकरण

विज्ञान और मूढ-विचार

डॉक्टर् फ्लीस्स् (Dr. Fliess) नामक एक जर्मन् चिकित्सक ने विभिन्न जन्तु-वैज्ञानिक (biological) घटनाओं में वर्षानुवर्ष घटने की विशेषता देखी है, एवं इस बात की पुष्टि की है, कि ऋतुओं के प्रख्यात वार्षिक क्रमचक्र (annual cycle) के अतिरिक्त, अन्यत्र भी विवाह, जन्म और मरण की दरों (rates) में सौरचक्र निरन्तर विद्यमान रहता है। फ्लीस्स् ने जन्तु-वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर २३ और २८ दिन के चक्र का पता लगाया था। अपने एक प्रकाशन में वे कहते हैं:

> "सब से रुचिर बात यह है, कि वर्ष और दिन हमारे जीवन पर वैसे ही शासन करते हैं, जैसे ये दोनों हमारे ग्रहों की द्रुत और मन्द गतियों का निर्णय करते हैं। और इस में न केवल हमारा भौतिक अस्तित्व ही आ जाता है, वरन् आध्यात्मिक भी, **हमारे उत्पत्ति दिवस भी** (स्थूल-मुद्रित शब्द हमारे हैं)।"

दूसरे शब्दों में, सभी पाश्चात्य विचारकों ने, जो मानव कार्यों के अन्दर कोई न कोई जन्तु-वैज्ञानिक तालमेल (biological rhythm) दर्शाने को अग्रसर हुए हैं, सीधे नहीं तो वक्रपथ से (indirectly), ज्यौतिष के सिद्धान्तों का समर्थन किया है। गोचर पद्धति, अथवा संक्रमण प्रणाली, के अनुसार, यह कहा जाता है, कि जन्म-कुण्डली में चाँद का जो घर हो,

उस से आरम्भ हो कर वे विभिन्न राशियों को अतिक्रान्त करते हुए, जातक की मनो-वैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं को विभिन्न दिनों के लिए भिन्न भिन्न वनाते चले जाते हैं। एक दिन उसे स्यात् गम्भीर खिन्नता के आवेश का पात्र वनना पड़े ; दूसरे दिन स्यात् उस पर कामुकता का आवेग हो ; तीसरे दिन स्यात् उत्पादक विचार (creative thoughts) उस पर छाए रहें ; और अगले दिन रोग का आक्रमण हो सकता है। इन सव का परिचय ज्यौतिष द्वारा पाया जा सकता है ; पर जव तक वैज्ञानिक ज्यौतिष को उस काच-पट में से देखेगा, जिस पर उस के अपने प्रिय विचारों और पक्षपूर्ण दृष्टि-कोण का रङ्ग चढ़ा हुआ है, उसे अन्धकार में इधर उधर भटकना ही पड़ेगा। निम्न-लिखित जिज्ञासा, जो **फ्लीस्स्** ने अपने भाषण 'मनुष्य की आवृत्तिशील गति-विधि' (Periodic Ways of Man) के अन्त में अपने ही आप से की है, वर्तमान विषय से प्रसंगत प्रतीत होती है।

"आश्चर्य क्यों हो? क्या हम अपने माता-पिता से अपनी शारीरिक वनावट, और उन के सजीव-द्रव्य को दाय रूप में प्राप्त नहीं करते? और फलतः, क्या हमें उसी भान्ति उन की काल के साथ सम्वन्ध रखने वाली जो सत्ता है, उस के विशेष गुण पितृ-दाय में प्राप्त नहीं होने चाहिएँ? यह प्रश्न हमें गम्भीर चिन्तन में डाल देता है। अव तक हम ने मनुष्य के अस्तित्व पर वर्ष का जो प्रभाव पड़ता है, उस पर कभी विचार नहीं किया। यह भूल है। काल (वर्ष) की गति ने जीवन पर जो एक समस्या उत्पन्न

कर दी है, उस का सम्मुख हो कर अध्ययन किया जाय, तो हो नहीं सकता, कि हमें इस की छाप मनुष्य-जाति पर, पशुओं की मैथुन-लिप्सा पर, और पौधों के फुल्ल-कुसुमित होने पर दिखाई न दे। यह मनुष्य पर ही समाप्त क्यों हो जाय? क्या मनुष्य ठीक वैसे ही जीवन-शृङ्खला में एक कड़ी नहीं है, जैसे पशु और पौधे हैं?"

आधुनिक वैज्ञानिक-अवलोकन ज्यौतिषिकों के इन मूढ़ता-मूलक विश्वासों की परिपुष्टि ही तो करते रहे हैं, कि प्रकृति के अन्दर जो भी तालमेल युक्त (rhythmic) घटनाएँ होती हैं, उन का नियमन ज्योतिर्लोक के प्रभावों से होता है। जो कुछ **फ्लीस्स्**, **स्वबोध** (Swoboda), और **क्राफ्ट्** (Kraft) ने देखा है, उस का सम्यग् ज्ञान प्राचीन हिन्दुओं को था, जिन्हों ने मनुष्य की मनो-वैज्ञानिक तथा जन्तु-वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के अन्दर ज्योतिर्वैज्ञानिक (astronomical) घटनाओं के साथ साथ पुनरावर्तित (repeat) होने का, (अर्थात् नियत काल के अनन्तर वार वार घटित होने का) गुण देख कर ज्यौतिप सम्वन्धी ज्ञान की एक वृहत् राशि हमें पितृ-रिक्थ के रूप में प्रदान की है। हमारा अज्ञान, दम्भ, तथा मनो-मालिन्य हमें अपने पूर्वजों की मेधा की भरसक प्रशंसा करने नहीं देता; हाँ, हम ने यह कौशल अवश्य सीख लिया है, कि यदि वही वातें आधुनिक वैज्ञानिकों के मुख से निकले, तो उन्हें नत-मस्तक हो कर अङ्गीकार कर लें। यह वस्तुतः एक अस्वस्थ मनो-वृत्ति है। वैज्ञानिक परिभाषा की भूल भुलैयों में जिसे हम 'जन्तु-वैज्ञानिक अभिनिवेश' (biological urge), 'मनो-वैज्ञानिक

आवेश' (psychological impulse) इत्यादि कहते हैं, उन का निरूपण सरल, सुगम्य ज्यौतिषीय-सूत्रों में—योग, अरिष्ट और अन्य यौगिकों द्वारा—किया हुआ है।

'गणित प्रवेशिका' नामक अपनी पुस्तक में ए० ऍन्० व्हाईट्हॅड् (A. N. Whitehead) महोदय कहते हैं कि :

> "प्रकृति की जीवन-लीला ही कुछ ऐसी है, कि उस में प्रधानता ऐसी घटनाओं की है, जो नियत समयान्तर के पश्चात् पुनः पुनः घटित होती हैं ; अर्थात् उस में अधिकांश ऐसी घटनाओं का अस्तित्व है, जो एक दूसरी के उपरान्त घटती हैं, और आपस में इतनी मिलती-जुलती हैं, कि भाषा का अनावश्यक तोड़-मरोड़ किए विना ही, हम उन्हें एक ही घटना का वार-वार प्रकट होना कह सकते हैं। हमारी शारीरिक जीवन-क्रिया मूलतः पुनरावर्तमान (periodic) है। इस का मुख्य अंग हृदय की धड़कन, और श्वास का आयात-निर्यात हैं। वस्तुतः, जीव के गर्भ में आने के दिन से ही कुछ घटनाओं के लगातार नियत कालानन्तर मुहुर्मुहुः घटित होने को एक मौलिक सत्य मान लिया जाता है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते, कि प्रकृति की कोई गति विधि ऐसी हो सकती है, कि ज्यों ज्यों एक के पश्चात् दूसरी, दूसरी के पश्चात् तीसरी, एवं इस प्रकार घटना के पश्चात् घटनाएँ घटें, तो हम यह न कह सकें, कि ऐसा तो पहले भी हो चुका है।"

प्रकृति में सर्व-प्राकारिक तालमेल (rhythms), क्या जीव-वैज्ञानिक और क्या मनो-वैज्ञानिक, अपने एक विश्व-

व्यापी विराट्-स्वरूप के अनुसार चल रहे हैं और उन का मूल कारण ज्योति-विद्या के बताए हुए सम्बन्ध हैं। इसी कारण से, भौमिक कार्य तथा प्राणी अपना रूप इतना विराट् बना लेते हैं, कि वह विश्व (cosmos) ही बन जाता है, एवं स्पष्टतया वे जगत् में एकता तथा एकस्वरता प्रदर्शित करते हैं। यही था वह ज्ञान, जो नक्षत्र-साहित्य के इस प्रख्यात सूत्र द्वारा युग-युगान्तरों से प्रचारित किया जा रहा है, कि 'यथोपरि च तथाऽधः।'

ज्यौतिष और जीव-विज्ञान

श्री० ए० ऍम्० फ़ाक्स् ने, जो केम्ब्रिज् के एक जन्तु-विद्या-विशारद हैं, अनेकों उदाहरण समुपस्थित किए हैं, जिन के द्वारा उन्हों ने जीवित जन्तुओं के अन्दर चन्द्रमा के अनुसार पुनरावर्तित होने की प्रवृत्तियों (lunar periodicities) का अस्तित्व सिद्ध किया है।

न्यू यार्क् के श्री० ऍच्० एल्० मूर् ने वर्षा और आर्थिक-स्थिति के चक्रों का सम्बन्ध शुक्र-ग्रह के अष्ट-वर्षीय काल-चक्र के साथ प्रदर्शित किया है, जो कि पृथिवी तथा सूर्य की अपेक्षा से (with respect to) लिया गया है।

इसी प्रकार वैज्ञानिकों की अन्य कई एक खोजें प्राय निश्चितरूप से हमें इस परिणाम पर पहुँचाती हैं, कि एक अति जटिल सम्बन्ध से नकार नहीं किया जा सकता, जो कुछ ज्योति-र्वैज्ञानिक पुनरावृत्तियों (astronomical periodicities) और भूकम्प, ज्वालामुखी-विस्फोट वातावर्त (cyclone) तथा वायु के

दवाव के परिवर्तन, वृक्षों के वर्धन, आदि घटनाओं में विद्यमान है।

> "डॉ० बुडाई (Dr. Budai) ने मानव प्राणियों पर चन्द्रमा के प्रभाव के कई एक रोचक उदाहरण इकट्ठे किए हैं। उन का कथन है कि अमावास्या और पूर्णिमा की तिथियाँ, एवं इन के पूर्वापर के दो-दो दिन, स्वास्थ्य के लिए विशेपतया भयावह होते हैं।"

यह ज्यौतिष के सर्वमान्य सिद्धान्तों के सर्वथा अनुसार है।

चन्द्रमा तथा भौमिक व्यापार और व्याधियाँ

एक प्रमुख आधि-चिकित्सक (अथवा मनो-वैद्य, psychiatrist) निम्नप्रकार कहते हैं, और उन के कथन को यथार्थ मानना चाहिए:

> "मैं यह नहीं जानता कि निद्राटन (somnambulism) पूर्णिमा को ही अधिकतर होता है, पर यह जानता हूँ, कि उस दिन कामेन्द्रिय, क्या पशुओं के और क्या मानव-जाति के, और दिनों की अपेक्षा अधिक उत्तेजित होते हैं। ऋतुओं के परिवर्तन, जल-वायु, वैद्युत-प्रभंजन, और ज्वाला-मुखी प्रक्रियाएँ, प्रत्यक्षतः सूर्य तथा चन्द्रमा की कलाओं से सम्वद्ध हैं। पानी का एक एक कण ठीक वैसे ही पूर्ण-राशी द्वारा प्रभावित होता है, जैसे ये ज्वार-भाटा की लहरें उस से अनुशासित होती हैं। यह ऋतु-दर्शन (menstruation) के काल को भी प्रभावित करता है। जिन युगल-जोड़ियों पर चन्द्रमा का प्रभाव पड़ा हुआ हो, उन की इन दिनों हृदय के

व्यसनों और विषयों में विशेष अभिरुचि रहती है। स्प्रूनिङ (sprooning)* जोड़ियों के लिए तो यह एक देवी-माता है। इस का जाङ्गली और पालतू जीवों की मैथुन-कामना के साथ सीधा सम्बन्ध है। पूर्णिमा के दिन कठोर छिलके मृदुल हो जाते हैं।"

प्राचीन हिन्दुओं की कृतियों में चन्द्रमा के मानव व्यापारों पर प्रभाव का इतना सतत वर्णन आया है, कि इस विषय का विधिवत् (methodical) सर्वेक्षण करते समय उन के साक्ष्य को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। उन में से कई उद्धहरणों का आधार तो अवधानपूर्वक अवलोकन तथा आलिखित अनुभव हैं। भौतिक-सूत्रों में इस प्रकार आता है:

(१) "**कलाऽऽ कर्षणं सूर्य गोलात्**";

(२) "**सूर्याचन्द्रमसौ नित्य सम्बन्धात्**";

अर्थात्, चन्द्र अपनी कलाएँ, अथवा ज्योतिः, सूर्य के आकर्षण से प्राप्त करता है; एवं सूर्य और चन्द्रमा के वीच में निरन्तर क्रिया-प्रतिक्रिया विद्यमान रहती हैं। न चन्द्रमा और न ही ग्रह, प्रकाश अथवा ताप के मूल-स्रोत हैं। ये सब अपनी ज्योतिः जाज्वल्यमान सूर्य-देव से ग्रहण करते हैं। यह ज्योतिः स्वभावतः प्रकाश-तरङ्गों की थर्राहट अथवा प्रान्दोलनों के रूप में होती है। ये तरङ्गें चाँद से वक्रीभूत अथवा परावर्तित (refracted or reflected) हो कर पृथिवी पर

---

* इस लौकिक-प्रयोग का अर्थ विशद नहीं है।

आती हैं, और इस प्रकार उन में बहुत विभिन्नता आ जाती है। मंगल से आने वाले प्रान्दोलन शुक्र अथवा बुध से आने वालों की अपेक्षा निम्नतर और मन्दतर होते हैं, और इस कारण उनके वर्णों में कुछ कुछ भिन्नता होती हैं, जो वर्णच्छटा दर्शक (spectroscope) द्वारा देखी और मापी जा सकती है। चाँद से आ रहे प्रान्दोलन भी शक्ति और आवृत्ति (frequency) दोनों बातों में बहुलांश भिन्न भिन्न होते हैं, जैसा कि चाँद का रङ्ग रजतवत् श्वेत से विकृत हो कर लाल में परिणत हो जाने से विदित होता है। जब हम यह बात ध्यान में रखें, कि प्रत्येक ज्ञात, मौलिक, तत्व (element) एक विशेष प्रकार का, अपने आप में निराला, प्रकाश छोड़ता है, जिस के प्रभेद को अङ्स्ट्राम् इकाइयों (Angstrom Units) में बताया जाता है, तो यह मान लेना विचित्र सा प्रतीत होगा, कि इन प्रान्दोलनों का न तो कोई भौतिक रूप है, और न भौमिक पदार्थों पर कोई प्रभाव। वास्तविकता यह है, कि ये दोलायमान (अथवा प्रकम्पमान) रश्मियाँ पृथिवी के तत्वों को सचेत और संचालित करके, उन में रासायनिक और भौतिक, उभय प्रकार के विपर्यय (changes) उत्पन्न कर देती हैं। पृथिवी ही समस्त उद्भिद-सृष्टि के जीवन का आधार है, एवं उस की अपनी रासायनिक और भौतिक बनावट में जो ये परिवर्तन होते रहते हैं, उन्हीं के कारण यह कहा जाता है, कि भूमि की उत्पादन शक्ति, और कृषि की स्वस्थता, बहुत अंश तक चन्द्रमा पर अवलम्बित होती है। चन्द्रमा की गुह्य शक्ति के विषय में अनेकों पुराने विचार चले आ रहे हैं, जिन में से कई एक का

यथार्थतामूलक आधार विज्ञान द्वारामिलता जा रहा है। वहुत से विचार, जो कभी मूढ़तामूलक समझे जाते थे, आज विज्ञान-संगत प्रतीत होते हैं। प्राचीन महर्षियों ने हमें अवलोकित, अथवा परीक्षित, तथ्यों पर आश्रित अनेक योग प्रदान किए हैं, जिन के द्वारा हम किसी भी व्यक्ति विशेष पर चन्द्रमा के **प्रभाव** को पर्याप्त सूक्ष्मता से विदित कर सकते हैं। पूर्वजों ने इन प्रभावों को पहले से खोज रखा है। विज्ञान का काम तो इतना ही है, कि उन की उपपत्ति वताए। आप यह देख सकते हैं, कि कई, उन्मत्त, अथवा नाडी-रोगग्रस्त, लोगों को उन्माद के आप्लाव—से आते हैं, जो चन्द्र-कलाओं के उतार-चढ़ाव के साथ साथ घटते-बढ़ते रहते हैं। हम स्वयं एक परिवार को जानते हैं, जिस में पति महोदय, जो चिड़चिड़े स्वभाव के एक नवयुवक हैं, चन्द्रमा के ह्रास के संग-संग उत्तेजित होते जाते हैं; परिणाम यह है, कि कोई भी अमावास्या घर में भारी झगड़े के विना नहीं जाती, जिस से उन की मानसिक संज्ञा क्षीण हो जाती है, और उन्हें व्याकुल कर देती है। अप्रैल, १९४३, की 'ज्यौतिप-पत्रिका' (The Astrological Magazine) में लिखते हुए, श्री० **ऐम्० वी० रामकृष्णन्** यों कहते हैं:

"वैसे तो सभी रोग, पर विशेपतया त्वचा-रोग, उन्माद, और मृगी, चन्द्रमा के प्रभाव के कारण उत्पन्न समझे जाते थे। मैं तो यह कहूँगा, कि यहां भी प्राचीन पुरुषों के निष्कर्ष यथार्थ थे। हम अपने अनुभव से जानते

हैं, कि इन व्याधियों की प्रचण्डता अमावस्या के समय बहुत बढ़ जाती है। इस से कोई नकार नहीं कर सकता।

"किसी को मानव और पाश्विक देहधारियों पर चन्द्रमा के प्रभाव में आस्था हो, वा नहो, इस बात से आश्चर्यान्वित हुए बिना कोई रह नहीं सकता, कि समुद्र की समतलता में, वायु-मण्डल की आविर्भूतियों में, और बितार-प्रोषित सन्देशों के प्रतिग्रहण में जो सामयिक परिवर्तन होते रहते हैं, वे चन्द्रमा की कलाओं के ठीक अनुसार घटते बढ़ते हैं। अमावस्या और पूर्णिमा के समय, समुद्र के अन्दर ज्वार-भाटे की लहरें बहुत बड़ी होती हैं और वायुमण्डल में भी अन्य अवसरों की अपेक्षा संक्षोभ अधिक होता है। ऐसे क्यों है? इस लिए, कि जब नभो-मण्डल में सूर्य और चन्द्र पास-पास होते हैं, जैसे अमावस्या पर, अथवा जब वे एकेतर से ठीक विपरीत दिशा में होते हैं, यथा पूर्णिमा पर, तो दोनों उपयुक्त संक्षोभ उत्पन्न करने का षड्यन्त्र रच लेते हैं ; वे समुद्रों को साक्षात् अपनी ओर खैंचते हैं, और जल का मानों एक ढेर बना कर उसे ऊपर आकर्षित करते हुए विराट् ज्वार-भाटा उत्पन्न कर देते हैं। वे, जिन वाति-कणों से वायुमण्डल बना है, उन्हें भी खैंचते हैं, और यादि वातावरण इतस्ततः परिभ्रमणशील मेघों से पहले ही संक्षुब्ध हो, तो वर्षा बरसाने के हेतु चिङ्गारी का काम देते हैं। वे हमें और तुम्हें भी खैंच रहे हैं, और हम सब को मानों ऊपर उठा रहे हैं। फलस्वरूप, अमावस्या और पूर्णिमा के समय आप का भार और अवसरों की

अपेक्षा थोडा होगा। किन्तु चन्द्रमा हम से समीप है; अतः हमारे ऊपर जो खींच पड़ रही है, उस का अधिक भाग चन्द्र के कारण ही है। सूर्य का पिण्ड भारी होने के उपरान्त भी, दूरी अधिक होने के कारण, वह इस खेल में वहुत थोड़ा भाग लेता है। चन्द्रमा की ऊपर उठाने की शक्ति ऐसी है, कि उस के कारण एक पदार्थ का भार १/८,४२४,४० वाँ भाग न्यून हो जाता है। उदाहरणार्थ, जव चन्द्र ठीक शिर के ऊपर हो, तो एक ४,००० टन् के सामुद्रिक वाष्प पोत का भार एक पौण्ड घट जाता है। इतना सूक्ष्म प्रभाव मापने का कोई मान-यन्त्र इदानीं पर्यन्त आविष्कृत नहीं हुआ। तथापि, यह खींच ज्वार-भाटा लाने, और तादृशी अन्य सव घटनाओं को घटाने के लिए पर्याप्त है। अमावस्या के लगभग, जव कि वातावरण में हिल-चल होती है, वर्षा होने की सम्भावना रहती है, और यही कारण है, कि चन्द्रमा की घटती कलाओं के समय लगाए गए पौधों की अपेक्षा वढ़ती कलाओं के समय लगाए पौधों के सम्यक् विकसित हो सकने की सम्भावना अधिक होती है। पुनश्च, जीवों के विभिन्न कोशा (cells) जिन से उन के अवयव वने होते हैं, चन्द्रमा की ऊपर उठाने वाली शक्ति का प्रत्युत्तर देते हैं। अतः, यह अनायास ही समझ में आ सकता है, कि और समयों की अपेक्षा, अमावस्या के अवसर पर त्वचा के रोगों, उन्माद, मृगी, ऐंठन लाने वाले रोगों, एवं विषाक्त-दंश के प्रभावों से पीड़ित लोगों का कष्ट क्यों वढ़ जाता है। सामुद्रिक जीवियों का मैथुन-जीवन चन्द्रमा

द्वारा नियन्त्रित होता है, क्यों कि उन का समग्र देह समुद्र-जल में निमग्न रहता है, जिस का उतार-चढ़ाव चन्द्र-कलाओं के अनुरूप होता है। मैं शरीर विज्ञानियों और प्रकृति के अन्वेषकों से वलपूर्वक अनुरोध करूँगा, कि वे पशु जीवन और चन्द्र-कलाओं के पारस्पारिक सम्वन्ध का अध्ययन करें, और अपने निष्कर्ष विज्ञान के आधार पर सिद्ध करें।

"हम देख चुके है, कि ठोस धरती भी ज्वार-भाटे की शक्ति के कारण ऊपर उठती और नीचे गिरती है, और जैसे कि **माइकेल्सन्** ने माप कर पता लगाया है, इस उत्थान तथा पतन का अधिकतम परिमाण प्राय नौ इञ्च् है। यह उठना और गिरना अमावस्या के समय सव से अधिक होना चाहिए, क्यों कि उस समय सूर्य और चाँद मिल कर पृथिवी को विकृत करने की चेष्टा करते हैं। हमें विदित है, कि भूकम्प भूपटल (crust) में अस्थायित्व (instability) के कारण आता है। अत एव यह आशंसा करना युक्ति-संगत ही है, कि इस अस्थिरता अथवा अस्थायित्व (instability) का कारण वैसी ही ज्वार-भाटा-जनक शक्तियाँ हैं, जैसी चन्द्र की आकृष्टि द्वारा उत्पन्न होती हैं। अमावस्या को ज्वार-भाटा, अथवा आप्लाव, की शक्तियाँ (tidal forces) जव अधिक वलवती हों, तो वे इतनी पर्याप्त हो जाती हैं, कि भूकम्प लाने के लिए उपयुक्त स्थिति उत्पन्न करने में एक चिङ्गारी का काम दे सकें। ये आप्लाव-शक्तियां एक अग्न्यस्त्र-कीलक

(trigger), अथवा "घोड़े", की भान्ति हैं, जो उस मशीन् को केवल चालू करती हैं, जो अपनी क्रिया आरम्भ करने के लिए केवल चिङ्गारी की प्रतीक्षा में सज्ज खड़ी थी। यदि इतिहास के प्रलय-कारी भूकम्पों की एक सूची बनाई जाय, तो पता लगेगा, कि उन में से अधिकांश अमावस्या के लगभग आए हैं। विहार का भयङ्कर भूचाल ३१ मई, १९३५, को अमावस्या के एक दिन पूर्व आया था। कुछ अन्य भूकम्प अमावस्या के समीप उन अवसरों पर आए हैं, जब दो अथवा अधिक ग्रह युति (conjunction) में थे। इस से भी 'कीलक-शक्ति' के सिद्धान्त की पुष्टि होती है; कारण यह, कि ग्रहों की आकृष्टि शक्ति सूर्य और चन्द्र की खींच के साथ मिल कर भूकम्प लाने वाली अवस्थितियाँ उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। मानव ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि हो जाने के उपरान्त भी, कोई वैज्ञानिक अभी भूकम्प के विषय में भविष्यवाणी नहीं कर सकता। ग्रहण लगने, तथा अपने सिर के ऊपर दूर घटने वाली घटनाओं के विषय में तो वह वर्षों पूर्व ठीक ठीक सूचना दे सकता हैं; पर जो घटनाएँ उस के पड़ौस में—उस के आस-पास—और साक्षात् उस के पाँव तले घट रही हैं, उन के विषय में वह विवश, अथवा निस्सहाय है। क्या कोई ज्यौतिषिक भूचाल आने के सम्बन्ध में भविष्यवाणी कर सकता है, एवं भूकम्प-भीत प्रदेशों में बसने वाले करोड़ों लोगों की कृतज्ञता का पात्र बन सकता है, वा नहीं?"

षष्ठ प्रकरण

पारिसांख्यानिक साक्ष्य

यह वात, कि चन्द्रमा का मनुष्यों के जन्मों की पुनरावृत्ति (periodicity) पर निश्चित प्रभाव पड़ता है, एक स्विस् परि-संख्यान-वेत्ता (statistician) ने दिखाई थी। श्री० के० ई० क्रफ्ट् (K. E. Krafft) जिन्होंने अपने काम का आधार त्सूरिप् (Zurich) प्रान्त के जन्ममरण सम्वन्धी परिसंख्यानों (statistics) को वनाया है, निम्नलिखित परिणाम पर पहुँचे हैं। जिन समस्याओं पर क्रफ्ट् ने विमर्श किया है, उन में से एक तो जन्म-तिथियों का एक-ही-सा होना है, जैसा कि एक परिवार के सदस्यों में प्राय पाया गया है। "ऐसे संयोग, जिन में न केवल वही मास, वरन् वही दिन भी, वार वार आते हैं, और इतनी वार ऐसा होता है, कि उन की पुनरावृत्ति दैववशात् नहीं कही जा सकती।"[१६]

क्रफ्ट् (Krafft) ने यह निष्कर्ष निकाला है,[१७]

(अ) "कि पुँल्लिङ्गीय जन्मों की अपेक्षा स्त्री-लिङ्गीय तो जन्म दिन के सव भागों में अधिक नियम-वद्धता से वितरित होते हैं।

(इ) कि चन्द्रमा के निचले याम्योत्तरवृत्त को प्राप्त होने के ४० मिनट पश्चात्, जातकों की

---

[१६] रूपर्ट ग्लीडो लिखित "दैनिक जीवन में ज्योतिप"।

[१७] तत्रैव।

संख्या २० से ५० प्रति-शत घट जाती है, किन्तु जब वह देशान्तरवृत्त के साथ क्षितिज से ६०° की दूरी पर पहुँचता है, तो यह संख्या फिर बढ़ जाती है। (यह निरीक्षण सब मिला कर २,२१८ जातकों पर किया गया था)।

(उ) कि जब चन्द्रमा कुम्भराशि के उत्तरार्ध में हो, तो जन्मों की संख्या में विलोकनीय न्यूनता हो जाती है, पर जब वह मीन के प्रथम दश अंशों में होता है, तो पूर्व क्षति की पूरक, उतनी ही वृद्धि हो जाती है।

(ऋ) कि पूर्णिमा को पुँल्लिङ्गीय जातकों की संख्या घट जाती है, एवं उन की संख्या पूर्णिमा के लगभग अढ़ाई दिन पश्चात् सब से अधिक होती है।

(ऌ) कि जब चन्द्रमा दक्षिण से रविमार्ग (ecliptic) की ओर अग्रसर होता है, तो जन्म-संख्या बढ़ती रहती है, और अधिकतम उस समय होती है, जब वह पात-बिन्दु (node) से तीन अथवा चार अंश पीछे रह जाती है।

(ए) पुँल्लिङ्गीय जन्म सूर्य से अधिक प्रभावित होते हैं और स्त्रीलिङ्गीय चन्द्र से।"

अब क्रफ़्ट् के इन अवलोकित तथ्यों की महर्षि पराशर **द्वारा** प्रवर्त्तित **प्राण पद** सिद्धान्त से तुलना कीजिए। इस में

से विमर्श-योग्य प्रचुर सामग्री प्राप्त होगी। महर्षि पराशर के मतानुसार, मनुष्यों के जन्म नियत समयों पर ही हो सकते हैं, सर्वदा नहीं। यह वर्तमान शताब्दी का दुर्भाग्य है, कि हम कभी चिन्तन नहीं करते। हम अपने मन में पहले से वसाई हुई धारणाओं के आधार पर ही ज्यौतिष की निन्दा करने के लिए **पूर्व तर्कित** युक्तियाँ घड़ लेते हैं। और हमारे स्वभाव में यह धारणा घर कर गई है, कि अवलोकन के अद्यतन साधन ही सब घटनाओं की वास्तविक प्रकृति प्रकाश में ला सकते हैं। प्राचीन हिन्दुओं के वौद्धिक जीवन में निरपेक्ष भाव से आरोहात्मक तर्क (inductive logic) द्वारा अध्ययन करने की विधि कोई नवीन वस्तु नहीं थी। उन्हों ने जिन उपायों से जीवन की कतिपय मौलिक समस्याओं को आच्छादित करने वाले रहस्यों का उच्छेदन किया था, उन्हें न हम जानते हैं, और न जान सकते हैं। यह मानना कोई सामान्य वुद्धि के प्रतिकूल नहीं है, कि हमारे जन्म से पूर्व भी वस्तुमय संसार था, और पदार्थों की गति विधि लगभग वैसी ही थी, जैसी अव है। यह विश्वास तर्क-संगत भले ही हो, यह अन्तर्ज्ञान (direct knowledge) नहीं है। "मैं उत्पन्न हुआ था," यह एक सरल उक्ति है, पर इस के पीछे भी कई स्पष्ट निष्कर्ष, अथवा अनुमान (deductions) निहित हैं, और साथ ही अपने मन्तव्यों (postulates) में अवचनीय विश्वास भी पाया जाता है। एसी उक्ति अन्तर्ज्ञान पर अवलम्वित नहीं हो सकती। आप को यह विदित हो सकता है, कि आप विद्यमान हैं; पर यह वात आप इतनी सीधी रीति से जान नहीं सकते, कि आप का

जन्म भी हुआ था। यह एक अनुमान है, यद्यपि है यह युक्ति-युक्त, और आप का निष्कर्ष ठीक होने की वहुत प्रवल सम्भावना है। अत एव हमारे मन में जो धारणाएँ पहले से वैठी हुई हैं, वे हमारे एक सरल सी वात स्वीकार करने में क्यों वाधक हों, कि ऋषियों ने ज्यौतिष के सिद्धान्त और योग जिन उपायों से स्थिर किए थे, वे उतने ही विश्वास और भरोसा किए जाने योग्य थे, जितने कि आधुनिक विचारकों द्वारा प्रयुक्त साधन। हमें इस मिथ्या कल्पना के अधीन नहीं रहना चाहिए, कि संसार की वास्तविकता तक पहुँचने में हमारा पथ-प्रदर्शन करने के लिए, शास्त्रीय-प्रमाण (authority) और निष्ठा के स्थान पर, (जो कि प्राचीन गवेषणा के आधार माने जाते थे), सोच-समझ कर अवलोकन और तार्किक-युक्ति (observation and reason) को आरूढ़ करना, कोई नूतन अनुभव है।

बौद्धिक तालमेल

फ्राँस् के एक गणितज्ञ **पॉल् शॉइनार्द** (Paul Choisnaurd) ने ११९ व्यक्तियों के, जो वड़े मनीषी थे, जन्म पत्रों की समीक्षा की थी। उन के अन्वेषणों से ज्ञात हुआ, कि उन में से एक उदाहरण में भी चन्द्रमा वृश्चिक-राशि में नहीं पाया गया। वैसे सिद्धान्तरूप में, उन के अनुसन्धान पर यह आपत्ति हो सकती है, कि मेघा, अथवा बौद्धिक क्षमता (intellectual power) अन्वेषक की अपनी व्यक्तिगत सम्मति, और अन्वेषित के प्रति आदर-भाव, का विषय है, और कोई निरपेक्ष गुण नहीं है। किन्तु उन की सूची में वे

सब व्यक्ति आ जाते हैं, जिन्हों ने दर्शन, विज्ञान, आदि में अतीव विशिष्ट स्थान प्राप्त किया; यथा **फ्लैम्मेरियन्** (Flammarion), **बायरन्** (Byron) इत्यादि।[३८] "और फिर भी, जिन १,४५० सामान्य श्रेणी के लोगों का निरीक्षण किया गया, उन में से १४० की दशा में चन्द्रमा वृश्चिक में था। सम्भाविकता (probability) के नियमों से यह असाधारण विचलितता (deviation) एक ज्यौतिषी को छोड़ कर, सब को चकित कर देती है। पर यह ज्यौतिष-सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल है, जो यह बताते हैं, कि चन्द्रमा का वृश्चिक में होना प्रबल आभास, तीव्र वैयक्तिक मनोमति, और उग्र राग द्वेष उत्पन्न करता है। इस स्थिति में चन्द्रमा निष्पक्षता तथा न्याय-शीलता के प्रादुर्भाव को प्रत्यक्ष अवरुद्ध करता है, जो महान् मनीषियों के विशिष्ट गुण होते हैं।" ज्यौतिष के नियमों के अनुसार मंगल-ग्रह युद्ध का स्वामी है। यदि ज्यौतिष विद्या सच्ची है, तो सब सैनिक नेताओं के जन्म-पत्रों में मंगल बहुत बलशाली घर में होना चाहिए। सैनिक व्यक्तियों के दो सौ जन्म-पत्रों में, 'जो यदृच्छया (at random) लिए गए थे,' **शॉइनार्द** (Choisnaurd) ने "देखा कि मंगल की (अन्य ग्रहों के संग) दृष्टियों की संख्या सैनिकों में पर्याप्त अधिक थी।" नीचे वह सारिणी दी जाती है, जो उन्हों ने प्रस्तुत की थी, और जो यह दिखाती है, कि प्रत्येक श्रेणी के प्रतिशत कितने व्यक्तियों के जन्म-पत्रों में मंगल की अन्य ग्रहों पर किसी न किसी प्रकार की दृष्टि (aspect) थी:

---

[३८] तत्रैव।

मंगल की जिस ग्रह पर दृष्टि है	साधारण नागरिकों का प्रतिशतांक	सैनिकों का प्रतिशतांक	न्यूनाधिकता
वुध	४४	५८	+१४ प्रतिशत
शुक्र	३६	५०	+१४ ,,
वारुणी (Uranus)	४५	५८	+१३ ,,
सूर्य	५०	६०	+१० ,,
चन्द्र	५०	६०	+१० ,,
वृहस्पति	५४	५६	+ ५ ,,
शनि	४५	५०	+ ५ ,,
वरुण (Neptune)	४६	४८	+ २ ,,

प्रो० ऍल्स्वर्थ हण्टिङ्टन् (Prof. Ellsworth Huntington) ने अपनी पुस्तक "**सभ्यता के मुख्य उद्गम-स्थान**" में काल-चक्रों पर विस्तार पूर्वक विवेचन किया है, और वे कुछ रोचक सूचनाएँ हमें दे सकते हैं, जिन्हें ज्यौतिष के विभिन्न सिद्धान्तों के साथ सम्वद्ध समझा जा सकता है। उन के कतिपय निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं।

(१) साधारणतया गर्भाधान सब से अधिक जून में होते हैं, क्यों कि उस समय हमें, जीव-विज्ञानात्मक दृष्टि से, कुछ न कुछ हो जाता है।

(२) संसार के प्रसिद्ध लोगों का जन्म फ़रवरी मास में होता है।

(३) आत्महत्या, उन्माद और कामुकता-विपयक अपराधों की संख्या जुलाई और अगस्त में पराकाष्ठा (maximum) को संप्राप्त होती है।

(४) मानसिक-क्रियाओं में भी ऋत्वानुसार परिवर्तन होता है।

उन्हों ने बौद्धिक कर्मों, भाव-आवेशों इत्यादि में भी पुनरावृत्ति, (अर्थात् नियत समय के पश्चात् पुनः पुनः घटने) का गुण पाया है। **प्रो० वेज़्ली मिच्चल्** (Prof. Wesley Mitchell) का कथन है, कि व्यापार में कोई काल-चक्र इतना बली नहीं, जितना ४१ से ४३ मास तक का। यदि पुराकालीन हिन्दुओं को इन काल-चक्रों का ज्ञान नहीं था, अर्थात् यदि वे नहीं जानते थे, कि आकाशीय योगों और भौमिक घटनाओं में कोई लगाव हैं, तो वे ऐसे नियम क्यों कर संसार को दे सकते थे, जिन से व्यापारिक घटनाओं की भावी-प्रवृत्तियों के विषय में पूर्वोक्ति की जा सकती है? उदाहरणार्थ, एक प्राचीन ज्यौतिष ग्रंथ में यह बताया गया है, कि जब भी

मंगल सिंह-राशि में प्रवेश करेगा, तो सोना, ताम्बा एवं सभी रक्त-वर्ण वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में प्राप्य होंगी, जिस का परिणाम यह होगा, कि इन धातुओं से सम्वन्धित व्यापारिक क्रियाएँ वहुत वढ़ जाएँगी। मंगल ५४० दिन के पश्चात् एक वार सिंह-राशि में प्रवेश करता है। यह एक महत्व-पूर्ण काल-चक्र है, जिस के प्रभाव, यदि उन्हें सावधानतया अध्ययन किया जाए तो, व्यापारिक जगत् के लिए वड़े महत्व की वातें प्रकट कर सकते हैं।

प्रायौगिक प्रमाण

यदि ज्यौतिष सच्चा है, तो यह परिणाम निर्विवाद है, कि कोई से दो व्यक्ति, जो एक ही दिन, एक ही स्थान पर, एक ही समय उत्पन्न हुए हैं, एक ही से भाग्य के स्वामी होंगे। **के० ई० क्रफ़्ट्** ने दिखाया है, कि सच-मुच ऐसे ही होता है।

> [३९] "अपनी पुस्तक '**ज्योतिश्शरीर-विज्ञान**' (Astro-physiologie) के अन्दर, जो १९२८ में लाईप्सिष् (Leipzig) में प्रकाशित हुई थीं, **क्रफ़्ट्** (Kr. fft) ने ७२ व्यक्तियों की एक सूची दी है, जिन में से दो-द। अथव। तीन-तीन प्राय एक ही समय, एक ही दिन और एक ही स्थान पर उत्पन्न हुए, और सर्वदा एक ही आयु में, लगभग एक से कारणों वश मृत्यु को प्राप्त हुए। ये तथ्य वास्ल (Basle) और जेनेवा (Geneva) नगरों की मनुष्यपाल-समितियों की पंजिकाओं (registers) में से लिए गए थे, और जो चाहे,

[३९] तत्रैव।

जन्मस्थान	नगर पंजिका में क्रमांक	लिंग	जन्म की तिथि तथा समय	मृत्यु की तिथि	मृत्यु का कारण
प्लेन् पैले	१	स्त्री०	२२ जन०, १८२२; ९ प्रातः	२६ जून्, १९०६	जरा-जीर्णता
जेनेवा	३९	स्त्री०	२२ जन०, १८२२; १० प्रातः	१७ जन०, १९०८	,,
जेनेवा	२७३	स्त्री०	२२ मई, १८३३; १ प्रातः	२४ अप्रैल्, १९२०	श्वास नाली की जलन
वर्साई	११	स्त्री०	२२ मई, १८३३; २ प्रातः	१ जन०, १९२१	,,
वास्ल	२६४८	स्त्री०	१८ सित०, १९०१; ३½ प्रातः	५ सित०, १९२०	जल-दोष और शिराव्याधि
वास्ल	२६५६	स्त्री०	१८ सित०, १९०१; ४-२० प्रातः	३० अप्रैल् १९१९	जल-दोष और क्षय रोग
वास्ल	२१९४	स्त्री०	४ अगस्त, १९०१; ९ प्रातः	१ जन०, १९२१	राज-यक्ष्मा
वास्ल	२१९५	पुं०	७ अगस्त, १९०४; ९ प्रातः	३१ मई, १९१९	,,
जेनेवा	२२९	स्त्री०	८ अगस्त, १९०४; ७ प्रातः	२० फ़र०, १८२१	,,
जेनेवा	४७	पुं०	१८ फ़र०, १९०१; २-४५ प्रातः	११ फ़र०, १९२१	अंगार-एकौपित वाति द्वारा श्वास-रोध
जेनेवा के पास	८८	पुं०	१८ फ़र०, १९०१; ३ प्रातः	२२ मई, १९०६	डूबने से श्वास-रोध
वास्ल	४९८	पुं०	१८ फ़र०, १९०१; ४ प्रातः	१८ फ़र०, १९०१	विपाक्त ओपधि सूंघने से श्वास-रोध

उसे इन की पड़ताल करने की खुली छुट्टी है। हम पूर्ण सूची तो उद्धृत कर नहीं सकते, पर कुछ एक उदाहरण यहां दिए जाते हैं। दैव-वशात् होना एक-आध घटना की अवस्था में सम्भव है। किन्तु तीस ऐसी घटनाओं की अनवरत श्रेढ़ी (series) पर, जिन में एक सी बातें घटी हों, किसी को सुगमता से विश्वास नहीं आ सकता।"

इसी प्रसङ्गवश, हमें कुछ एक पाश्चात्य ज्यौतिषिकों के परिश्रम को संमानित करना न भूलना चाहिए, जिन्हों ने परिसंख्यानद्वारा (statistically) ज्यौतिष की सत्यता को दर्शाया है। **सीमूर्ज** (symours) एक सौ शत-वर्षीय व्यक्तियों (centenarians) की जन्म-पत्रिकाओं पर विचार करने के उपरान्त इस परिणाम पर पहुँचे हैं।[४०] "मेष और सिंह-राशियां विशेषतया लग्न के रूप में वार-वार आती हैं; किन्तु पृथिवी की राशियाँ, विशेषतया कन्या, वहुत ही विरली हैं। अन्य घरों की अपेक्षा, आठवें घर में ग्रह वहुत अल्प-संख्या में, अर्थात् वहुत थोड़ी वार, आते हैं। सूर्य और चन्द्रमा के साथ शनि और मंगल प्राय कभी वृत्तपाद (square) नहीं वनाते, पर वृहस्पति और शुक्र की अनेकों शुभ दृष्टियाँ उन पर पड़ती हैं।" हमारे अपने अनुसन्धान, जिन का वर्णन हम आगामी पृष्ठों में करेंगे, इस विषय में समाधान-कारी परिणाम संमुपस्थित करते हैं।

---

[४०] तत्रैव।

प्रान्दोलमान ऊर्जाओं का सागर

चाहें हम इसे पूर्व-निश्चयवाद कहें, चाहे कर्मों का फल अथवा ग्रहों का प्रभाव, तथ्य यह है, कि आकाशीय परिवर्तनों और भौमिक घटनाओं में सम्बन्ध का अस्तित्व सर्वत्र दृष्टि-गोचर हुआ है। हम नहीं जानते, और जानसकते भी नहीं, कि जीवित देही उसी प्रकार की लय-बद्धता अथवा तालानु-सारिता (rhythms) दिखाते हैं, वा नहीं, जैसी कि व्योम में विचरने वाले पिण्ड। किन्तु यह हम निश्चय से जानते हैं, कि दोनों में वार-वार घटित होने का समान गुण पाया जाता है। अयन चलन, अथवा विषुव के भिन्न भिन्न राशियों में विचरण, का मानव संस्कृति की विभिन्न अवस्थाओं के साथ घनिष्ट सम्वन्ध प्रतीत होता है। हमें तो ऐसा लगता है, कि ज्यौतिष विकास (evolution) का रहस्योद्‌घाटन करने में भी सहायक हो सकता है। यह हमें एक ऐसा भुज-युग्म (frame of reference) प्रदान करता है, कि हम मानव-विकास (human evolution) को पूर्वापर प्रसंग का सच्चा-सच्चा स्वरूप आँखों के सामने रख कर, अधिक निरपेक्ष भाव से अवलोकित कर सकते हैं। राशि-चक्र (Zodiac) एक मान-दण्ड है। उदाहरणार्थ, ऐसा माना जाता है, कि पृथिवी के अक्ष को एक चक्र पूरा करने में लगभग २,५६२,००० वर्ष लगते हैं। हम यह परामर्श दे सकते हैं, कि इस प्रकार के प्रत्येक चक्र में स्यात् मानव-जाति के जो पर्ण-जननात्मक, अथवा त्वचा के वर्णानुसार (phylogenetic), विभाग हैं, उन में से एक उत्पन्न हुआ है। इस योजना के अनुसार, अद्यतन

कृष्ण-वर्ण म्लेच्छ, पीतवर्ण मंगोल, तथा गौरवर्ण आर्य जातियाँ विकास की अन्तिम तीन लहरों को प्रदर्शित करती हैं। पर मनुष्य के विकास के लिए जितना काल पुरा तत्व-वेत्ता (palæontologists) मानते को उद्यत हैं, यह योजना उस से अधिक देती है। इन पर्यावृत्तियों (periodicities) के सम्वन्ध में 'ज्यौतिष-पत्रिका' (The Astrological Magazine) में प्रकाशित लेखों के अन्दर इतना कुछ कहा जा चुका है, कि उसे यहाँ उद्धृत करना अनावश्यक है।

इस समय तक संकलित तथ्य विशदरूप से दिखाते हैं, कि मनुष्य वैश्व प्रभावों (cosmic influences) के वश में है। पाटलोत्तर (ultra-violet) और रक्तपूर्व (infra-red) रश्मियाँ, और अन्य वैद्युत तरङ्गें अनायास ही मानव देह में से, और साधारण व्यक्ति के सिर की ठोस हड्डी तक में से, आर-पार हो सकती हैं। इस लिए, यह स्पष्ट है, कि इन तेजःकिरणों के अतिरेक का प्रथम दुष्प्रभाव, सम्भवतः ग्रन्थी-तन्त्र (glandular system) द्वारा, मनो-भावनात्मक, मानसिक और चित्त-विकारात्मक (psychical) शक्तियों पर पड़ेगा। यह भी प्रत्यक्ष्य ही है, कि हम प्रकम्पमान शक्तियों के एक साक्षात् समुद्र में रह रहे हैं; वे शक्तियाँ चुप-चाप, कोई भूल किए विना, और समीचीन रूप से, इस जगती में लक्षों प्रकार के जीवों को उत्पन्न करने, पालने तथा नष्ट करने के साधन उपपादित करती हैं। और यह सव कुछ उस प्रति-क्रिया के अनुसार होता है, जो प्रत्येक प्राणी विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं के उत्तर में करे। अपि तु, प्रत्येक प्राणि

के विकास की जो निजी अवस्था हो, तदनुसार उस की योग्यता तथा आवश्यकताओं पर भी यह अवलम्बित होता है। एक कुत्ते को यदि चिरकाल तक पाटलोत्तर (ultra-violet) अथवा रक्तपूर्वस्थ (infra-red) रश्मियों की प्रचुर मात्रा में उत्तेजित किया जाय, तो उसे उन्माद हो जायगा, और वह लोगों को काटने दौड़ेगा। एक मनुष्य, सम्भव है, ऊर्जा की इस प्रचुरता को सम्यक् नियन्त्रण और निदर्शन में लाकर, अपनी निजी अवस्था को अच्छा बनाने के लिए एक भागीरथ प्रयत्न करे।

मेरे पास ऐसे पच्चास व्यक्तियों के जन्म-पत्र हैं, जिन की क्षय-रोग से मृत्यु हो चुकी है। उन की उदय हो रही राशि, अथवा लग्न, कदाचित् ही मेष, सिंह अथवा धनु होगी। क्रूर ग्रह सदैव मिथुन, और कन्या में पाए गए हैं, और बृहस्पति तथा शुक्र अत्यन्त ग्रस्त थे।

वंशजता का नियम

वंशजता (heredity) का नियम परिवारों के ज्यौतिषिकीय मान-चित्रों में भी यथावत् अनुभव होता है, जैसा कि एक-समान ज्यौतिषीय विशेषताओं के पुनः पुनः दृष्टि-गोचर होने से सिद्ध होता है। जिन्हें हम 'राज-योग' कहते हैं, वे ग्रहों की कुछ विशेष स्थितियाँ ही तो हैं, जो जन्म होने के ठीक क्षण पर संयुक्त रश्मि-समूह को कुछ इस प्रकार प्रभावित करते हैं, कि जातक महान्, ख्यातनामा, और विशिष्ट गुणों का स्वामी, बन जाता है। जन्म का समय निश्चय ही कोई निरर्थक और नगण्य अवसर नहीं है। बच्चा जो मातृ-गर्भ

से तत्काल बाहर पदार्पण करने को है, बड़ी सुनम्य (plastic) अवस्था में होता है, और उस की ग्रन्थियों के कोमल अंग सद्य-एव परितः-विद्यमान ग्रह-प्रभावों के ढांचे में ढल जाते हैं। यह सब उस अमूल्य-क्षण, अथवा मुहूर्त्त, पर निर्भर होता है, जब कि शरीर के समग्र ग्रन्थी-समूह (glands) यथावत् बनाए जाते हैं, और प्रकृति-माता उन पर अपनी छाप अंकित करती है। यह अचम्भे की बात अवश्य लगती है, पर है सत्य, कि हमारे शरीर के भौतिक द्रव्य के साथ विभिन्न ग्रहों की परस्पर-क्रिया (interaction), अथवा रासायनिक सम्पर्क (chemical affinity), से उत्पन्न विविध धातुओं (ingredients) के मिश्रण से जन्म काल में ही हमारे चरित्र, एवं भाग्य, की रूप-रेखा निश्चित रूप से प्रस्तुत हो जाती है।

कुछ लोगों की यह मांग है, कि ज्यौतिष की यथार्थता अवश्य 'प्रदर्शित' की जानी चाहिए, मानो कि ज्यौतिष के अन्दर हमें केवल भौतिक वस्तुओं से ही काम पड़ता है। परन्तु यदि ज्यौतिष के सत्यासत्य होने का प्रदर्शन करना ही हो, तो हमें पहले यह पृच्छा करना आवश्यक प्रतीत होता है, कि 'प्रदर्शन' करना कहते किसे हैं?

ज्यौतिष का अभिप्राय लोगों के चरित्र और भाग्य का निरूपण करना है। यही इतिहास भी करता है। इतिहास निस्सन्देह एक ऐसा अनुशासन (discipline) है, जिस की वास्तविकता अवचनीय (unchallengeable) है। पर क्या यह विज्ञान है? और यथार्थ रूप में 'प्रदर्शन' का जो भाव है, ठीक उसी अर्थ में, क्या इतिहास का प्रदर्शन सम्भव है?

क्या हम ऐतिहासिक तथ्यों की सत्यता 'प्रदर्शित' कर सकते हैं? क्या औरङ्गज़ेब् एक अच्छा मनुष्य था, वा बुरा? क्या स्कॉट्-लोगों की रानी मेरी (Mary) एक भद्र महिला थी, वा अभद्र? यह एक अतीव मनुष्योचित प्रश्न है, एवं एक समीचीन, मर्यादानुकूल (legitimate) ऐतिहासिक जिज्ञासा भी, जिस पर यथोचित, ठीक ठीक, ऐतिहासिक खोज की जा सकती है। पर क्या उस उत्तर की सत्यता—वह उत्तर चाहे पक्ष में हो, चाहे विपक्ष में— "वैज्ञानिक रीति" से 'दिखाई' जा सकती है? क्या हम उस की "निष्पक्ष भाव से परीक्षा" कर सकते हैं?

हम में से जो स्कॉट्-जातीय रानी की भद्रता का समर्थन करते हैं, उन्हें प्राय बहुत विभ्रान्ति का सामना करना पड़ता है। तो भी, यह ऐतिहासिक तथ्य हैं, कि मेरी स्टुअर्ट लैङ्ग् साइड् के स्थान पर पराजित हुई; वह ऍलिजाबॅथ् अथवा सॅसिल् की अपेक्षा घटिया राजनीतिज्ञ थी; एवं वह फ़ॉइथरिङ्गे के स्थान पर मारी गई थी। ये कदाचित् वैज्ञानिक तथ्य नहीं हैं, और न ही वैज्ञानिक विधि से दर्शाए जा सकते हैं। इन का प्रदर्शन तो उसी ढंग से हो सकता है, जो कि इतिहास की दशा में सम्भव है। किन्तु इस का अर्थ- यह तो न लेना चाहिए, कि इन के विषय में कोई अनिश्चितता अथवा अस्पष्टता है। ज्यौतिष और इतिहास में न्यूनतोन्यून यह बात तो साँझे की है, कि अधिक नहीं तो आंशिक रूप में, इस का उद्देश्य मानव-चरित्र का चित्रण करना है। परन्तु ज्यौतिष एक बात में इतिहास से भिन्न भी है: इस का एक अंग—सब

घटनाओं में—वैज्ञानिक तथ्यों का भी आश्रय लेता है। जहाँ जहाँ ज्यौतिष का वैज्ञानिक व्यवस्था विषयक तथ्यों से सम्वन्ध पड़ता है, इस का वैज्ञानिक प्रदर्शन भी सम्भव है। और वैज्ञानिक प्रदर्शन किया जाना चाहिए, एवं—साक्षात्—किया जा चुका है।

ज्यौतिषीय देन

क्यों कि ज्यौतिष के उच्चतर अनुसन्धानों का विषय मानव-चरित्र तथा अनुभव है, इस लिए अनिवार्य रूप से ज्यौतिषिक—सत्य "वैज्ञानिक प्रदर्शन" की सम्भावना से परे जा पड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे, उदाहरण के लिए, एक चित्रित आकृति अथवा एतिहासिक चरित्र भी दिखाए जा सकने की सम्भवता से अतीत हैं। तो भी ज्यौतिषीय, ऐतिहासिक तथा कलात्मक चित्रण अपने अपने स्थान पर आलोचनात्मक समीक्षा का विषय वन सकते हैं (अर्थात् प्रत्येक की तुलनात्मक विवेचना अपने अपने विशिष्ट ढंग से करके, हम यह कह सकते हैं, कि कौन सा चित्रण उत्तम है और कौनसा निकृष्ट)। एक चित्र वनाने के लिए, जिस की कलात्मक यथार्थता का वर्णन करना समीचीन समझा जा सके, एक अद्भुत प्रतिभा की, अथवा उस के सदृश किसी और गुण की, आवश्यकता पड़ती है। तथैव ज्यौतिष के क्षेत्र में उसी प्रकार का वृहत्कार्य उपपादन करने के लिए भी प्रतिभा—अथवा न्यूनतोन्यून एक विशेष प्रकार की ज्यौतिषीय दैवी-देन—अभिलषित है। वह ज्यौतिषिक-प्रतिभा—अथवा प्रवीणता—कहां उपलब्ध हो सकती है, और यदि वह पाई भी जाय, तो उसे पहचानेगा

कौन? निश्चय ही, वैज्ञानिक ढंग से शिक्षित मन तो ऐसा करने से रहा। यह वैज्ञानिक ही ठीक ऐसा व्यक्ति है, जो ज्यौतिप के सम्बन्ध में किसी प्रकार का युक्तियुक्त निर्णय देने के सर्वथा अयोग्य है। यही तो उन लोगों की मौलिक भूल है, जो "ज्यौतिप-विद्या के प्रदर्शन" की माँग करते हैं। ज्यौतिप की प्रकृति में ही कुछ ऐसी बात है, कि इस के पतन और उत्थान का निर्णय विज्ञान के न्यायालय से प्राप्त नहीं हो सकता। एक ऐतिहासिक, मनो-वैज्ञानिक, कवि अथवा उपन्यास-लेखक में कुछ न कुछ ज्यौतिषीय अभिज्ञान की क्षमता हो सकती है। वैज्ञानिक में, जैसा वह इस समय है, यह शक्ति कदाचित् हो नही सकती।

रावण को भी हमें उतना यश प्रदान करदेना चाहिए, जितने का वह अधिकारी है। सुतराम्, ज्यौतिप के जो आलोचक संशयापन्न हैं, उन्हें आरम्भ में ज्यौतिप की ऐसी शाखाओं पर विचार करना चाहिए, जिन का सम्बन्ध वस्तुमय (objective) संसार से है, अनुभव से नहीं। उन्हें पहले ऋपट् ऐसे लोगों की कृतियों का अवलोकन करना चाहिए, और फिर स्यात् वे उस कठिनाई से अभिज्ञ हो पाएँ, जो इस प्रश्न के अन्तर्गत निहित है, कि वाह्य पदार्थों की जगती के ज्ञान से मनुष्य क्यों कर आन्तरिक अनुभव के संसार के ज्ञान में पदार्पण कर जाता है।

भविष्य-वाणियों का पूरा होना

यह बहुत अचम्भे की बात है, कि जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ सदैव ज्यौतिप की दृष्टि से महत्वपूर्ण अवसरों पर ही होती हैं, अर्थात् जब प्रबल अथवा निर्बल ग्रहों की दशाएँ और

भुक्तियाँ (ज्यौतिषीय समय-मान) कार्यानुरत होती हैं। उदाहरण स्वरूप, हम **नैपोलियन्, हिट्लॅर्, मुस्सोलिनी, सम्राट् षष्ठ जॉर्ज, हिरोहितो** और **स्टालिन्** की जन्मकुण्डलियाँ ले सकते हैं। **हिट्लॅर्** की जन्मकुण्डली में सब से बलिष्ठ योग शनि का दशम गृह में, और मंगल का सप्तम गृह में प्रतिष्ठित होना है, जिस के कारण एक दूसरे को अत्यन्त क्रूर दृष्टि से देखता है। सौम्य ग्रह बृहस्पति एक अत्यन्त सम (निश्शक्त) स्थान में पड़ा हुआ है। ज्यौतिष-पाठ्य-पुस्तकों में लिखा है, कि यदि मंगल और शनि का विशेष गृहों में संगम हो जाय (जिस में विभिन्न दृष्टियाँ भी सम्मिलित हैं), तो जन्मकुण्डली की सामान्य सबलता और निर्बलता को ध्यान में रखते हुए, यह कहा जा सकता है, कि जातक अत्यन्त उग्र-वृत्ति होगा। **फ़ूरर्** (Fuehrer, नेता) की जन्मकुण्डली में ग्रहों की यह अवस्थिति अकस्मात् नहीं बन गई। 'ज्यौतिष-पत्रिका' (The Astrological Magazine) में एतद्विषयक चेतावनी निम्न शब्दों में १९३७ में ही दे दी गई थी :—

> "**मुस्सोलिनी** और **हिट्लॅर्** के जन्मपत्र यूरोप को एक भयानक क्षेत्र की ओर ले जायँगे। यह अब अधिक नीति-निपुण नेतागण जिन देशों में हों, उन का काम है, कि यूरोपीय राजनीति के समतुलन (equilibrium) को ठीक करें। जापान के महाराजाधिराज का जन्मपत्र ध्यान से पढ़िए, और देखिए कि कैसे इटली, जर्मनी और जापान सर्वथा दण्डमुक्त हो कर संसार के सार्वजानिक नियमों की अवहेलना करते हैं।"

जहाँ तक हिट्लॅर् और मुस्सोलिनी के भाग्यचक्र का सम्वन्ध है, हम ने 'ज्यौतिष-पत्रिका' (The Astrological Magazine) के स्तम्भों में पर्याप्त लिखा था। निम्न-लिखित उद्धरण वताएँगे, कि फलित ज्यौतिष कितने अद्भुत ढंग से भविष्य का निरूपण करता है:—

> [४१] "चन्द्रमा की अन्तर्दशा का द्वितीय भाग प्राय १८ अक्तूवर १९४४, से आरम्भ होता है और नौ मास तक प्रारव्ध रहता है। इसी मध्य में हिट्लॅर् के वैभव-काल का अन्त होगा। निकट-भविष्य में जर्मनी के अन्दर सहसा अशंकित और रंग-मंच की सी अनोखी घटनाएँ घटेंगी, और हिट्लॅर् का त्वरित अन्त हो जायगा, विशेपतया इस लिए कि मंगल वड़ी क्रूर स्थिति में है।"

उपर्युक्त चित्रण ज्यौतिष के विद्यार्थियों को निस्सन्देह वहुत रुचिर प्रतीत होगा, विशेपतया अन्तिम पङ्क्ति में वर्णित मंगल की स्थिति; क्यों कि यह प्राय देखा गया है, कि मृत्यु के घर में मंगल का होना अत्यन्त भीपण मृत्यु का सूचक है। हिट्लॅर् की दशा में, सूर्य मेप के दश अंशों पर अत्यन्त दीप्त है। मार्च, १९२४, के अन्त में, जव उसे कारागार भेजा गया था, शनि ठीक विपरीत अंश (लग्न) पर था। मुस्सोलिनी तथा इटली के विषय में, निम्नलिखित पूर्वोक्ति वहुत रुचि से पढ़ी जा सकती है:

---

[४१] 'ज्यौतिप पत्रिका', सितम्वर, १९४३, का अंक।

[४२] "१९४३ और १९४४ इटली के लिए महत्वपूर्ण हैं, और फाशी-वाद का विनाश ध्वनित करते हैं। **पीड्मॉण्ट्** (Piedmont) के राजकुमार की जन्मकुण्डली में भी भीषण प्रभञ्जनों की खिचड़ी पक रही है, और जैसे ही वह सिंहासनासीन होगा, यह फूट निकलेगी। शनैश्चर याम्योत्तर गमन द्वारा इस अंश के विम्व (orb) में से अक्तूबर, १९४४, के लगभग लँघेगा, एवं इस अंश में से ठीक याम्योत्तर गमन (transit) जुलाई, १९४५, के लगभग होगा। अतः इस समय के समीप **डूके** (Duce) को किसी भी अनिष्ट की सम्भावना हो सकती है।"

श्री० साइरिल् फ़ैगन् (Mr. Cyril Fagan) ने न्यू यार्क के पत्र '**अमेरिकन् ज्यौतिष**' (American Astrology) की मार्च, १९५५, संख्या में लिखते हुए इस प्रकार अपने विचार प्रकट किए हैं:—

"'ज्यौतिष पत्रिका' (The Astrological Magazine) के अप्रैल, १९४७, अंक में सम्पादक महोदय, **डॉक्टर् बी० वी० रामन्**, ने आधुनिक युग की एक अत्यन्त सफल भविष्यवाणी की, जब उन्हों ने ये शब्द लेखनी-बद्ध किए: 'बारह नवम्बर, १९४७, को कर्क के अन्तिमांश पर मंगल और शनि की युति (conjunction) होगी। ये योग इस देश के किसी जनमान्य नेता के हनन के, (हिंसात्मक हनन के, क्यों कि हिंसक मंगल शनि के संग

---

[४२] तत्रैव; जुलाई १९५३, अंक।

द्वादश गृह में है), द्योतक हैं।' (पृ० २४७)। इस में तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता, कि जब **डॉक्टर् रामन्** ने ये अशुभ शब्द लिखे होंगे, तो **गान्धी** का राशि-चक्र उन के समक्ष होगा। क्यों कि मंगल और शनि की युति, जिस का वर्णन उन्हों ने किया है, बारह नवम्बर्, १९४७, को ११ बज कर, २१ मिनट्, और ४५ सेकिण्ड् (अमेरिकन् समय) पर हुई, जब कि क्रूर ग्रहों का नाक्षत्रिक देशान्तर (sidereal longitude) कर्क में २८ अंश ६ कला और २८ विकला था, एवं **गान्धी** के चन्द्रमा के समीप था, जो कर्क में २६° ५५' पर था। **गान्धी** की हत्या नई दिल्ली में ३० जनवरी, १९४८, को हुई ; (देखिए होरा-सारिणी।) अतः **डॉ० रामन्** की पूर्वोक्ति, जो घटना से न्यूनतो न्यून दश मास पहले प्रकाशित हो चुकी थी, आश्चर्य-जनक रूप से सत्य सिद्ध हुई, यद्यपि हुई अतीव शोचनीय दशा में। इस भविष्यवाणी के सत्य निकलने के कारण **डॉ० रामन्** को संसार के सफल ज्यौतिषाचार्यों की प्रथम कक्षा में स्थान मिल जाता है, और इस से ज्यौतिष का अध्ययन वास्तविक रूप में लाभप्रद बन जाता है।"

ऊपर लिखे उदाहरण केवल मात्र ज्यौतिष की भविष्योक्तियाँ हैं, जो पर्याप्त समय पूर्व की गई थीं, और ज्यौतिष के सिद्धान्तों पर अवलम्बित हैं। ज्यौतिष विद्या विषयक इस निबन्ध में यह वैयक्तिक उल्लेख सम्मिलित कर देना खेदजनक है, पर छिद्रान्वेषकों का समाधान करने के लिए प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है ; इस लिए क्षमाशील

पाठकों को इस अप्रासंगिक-से उल्लेख की उपेक्षा कर देनी चाहिए।

यह साधारण ज्ञान की वात है, कि दशम घर, अथवा कोटि, जन्मकुण्डली में एक विशिष्ट स्थान होता है, एवं यह कहा जाता है, कि यह मनुष्य के जीविकोपार्जन के साधनों, और सार्वजनिक जीवन, पर शासन करता है। शनि नवम अथवा दशम गृह में हो, अथवा उन पर उस की कोई दृष्टि हो, तो यह सदैव इस वात का सूचक माना जाता है, कि अन्त में जाकर वह मनुष्यका किसी उच्च पद से पतन कराने में कारण वनेगा। स्पेन् के **द्वितीय फ़िलिप्**, **प्रथम नैपोलियन्**, **लुई त्रयोदश**, **काइज़र्**, **हिट्लॅर्** तथा **मुस्सोलिनी** की जन्म-कुण्डलियाँ शनि के प्रवल होने के दृष्टान्त हैं, एवं वृहस्पति की अत्यन्त शुभ स्थिति ने **ऍलिज़ाबॅथ्**, **जॉर्ज तृतीय**, महारानी **विक्टोरिया**, **जॉर्ज पंचम**, और **जॉर्ज षष्ठ** की अवस्था में उस से सर्वथा विपरीत फल दिखाया है।

स्वर्गीय **प्रो० बी० सूर्यनारायण राव** को वहुत सी नितान्त शुद्ध पूर्वोक्तियाँ करने का श्रेय प्राप्त है। चान्द्रमानस आनन्द (१९१४-१५) का विश्लेषण करके उन्हों ने 'ज्यौतिष पत्रिका' (The Astrological Magazine) की मार्च, १९१४, की संख्या में यों कहा था:

"सेनाओं में सहसा आवेश तथा उद्वेग भड़क उठेंगे, जिस का परिणाम अराजकता, और प्राचीन राजसी सत्ता के प्रति विद्रोह, होगा। सर्वाङ्गीन हानि, भय के कारण

किंकर्तव्य—विमूढता, और युद्धोताप परांकाष्ठा को पहुँचे हुए होंगे। एक यूरोपीय महायुद्ध की भारी आशंका है .... और (अमेरिका के) संयुक्त-राज्यों को अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, कि कहीं विनाश-कारी युद्ध की लपट में न आ जाएँ। यूरोप के राज परिवारों में दो देहान्तों के लक्षण हैं, जिन में से एक हिंसा के कारण होगा अथवा विश्वास-घात के कारण। अगस्त और सितम्बर के मासों में समस्त संसार के अन्दर राजनैतिक सम्बन्ध अत्यन्त संक्षुब्ध रहेंगे, जिस का कारण सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण होंगे, जो पन्दरह दिन के अन्दर अन्दर एक दूसरे के पश्चात् लगेंगे।"

आस्ट्रिया के आर्च-ड्यूक् (Arch Duke) की हत्या, एवं यूरोपीय महायुद्ध का सूत्रपात आज इतिहास के विषय हैं, और किसी टीका टिप्पणी के अपेक्षक नहीं हैं।

प्रॉक्टर महाशय का अज्ञान

स्वर्गीय **आर्० ए० प्रॉक्टर्** (R. A. Proctor), जो एक महान् ज्योतिर्विद् हो चुके हैं, अनेकशः इस 'जराधवल' और 'निराकृत मूढ़ता' पर बरसा करते थे, एवं अपना मन बहलाया करते थे; तथापि, इतना वे भी मानते थे, कि ऐतिहासिक दृष्टि से इस का अतीत काल बड़ा सम्भ्रान्त (noble) रहा है, और सैद्धान्तिक दृष्टि से इस का आधार पूर्णतया युक्तियुक्त है। परन्तु साथ ही वे यह भी कह गए, कि, "यह सुरम्य वाद, जिस ने प्रत्येक युग में बड़े से बड़े

मनीषियों को आकृष्ट किया, व्यवहार में, ठोस तथ्यों के सामने, काम नहीं देता।" श्रीयुत **प्रॉक्टर्** ने जो कुछ इस विषय पर लिखा है, उस के अवधान-पूर्वक अध्ययन से, और उस में उनकी हास्यजनक भूलों द्वारा यह निर्विवादरूपेण स्पष्ट हो जाता है, कि इस विद्या का इतना भी व्यावहारिक ज्ञान उन को नहीं था, कि एक जन्मपत्रिका तो वना सकें, उस का फलादेश वताना तो दूर की वात रही। एकदा उन्हों ने सामान्यताओं (generalities) के उच्छृङ्खल वन से निकल कर खुले क्षेत्र में अपने शत्रु (ज्यौतिष) को आह्वान करने की धृष्टता की थी, और स्वयं ही अपने हुछलेपन (temerity) का आखेटक वन कर रह गए थे। 'कॉर्न्-हिल्ल् मैगज़ीन्' (Cornhill Magazine) नामक पत्रिका के जुलाई, १८७७, अंक में उन की लेखनी से एक निवन्ध "युद्ध का ग्रह" शीर्षिक के अधीन प्रकाशित हुआ था, जिस में नीचे लिखा संदर्भ आता है:—

> "परन्तु यदि मंगल सचमुच युद्ध का ग्रह है, यदि उस का तेज भूमि-नीच (perigee) की अवस्था में, जब वह हमारे निकट होता है, पृथिवी के सभी राष्ट्रों पर बरसता है, और युद्ध तथा रक्तपात की उत्तेजना देता है, तो हमें आशंका होनी चाहिए, कि आगामी मास कतिपय हरे भरे भूमि-क्षेत्रों में विनाश का कारण वनेंगे। क्यों कि मंगल १८४५ से हमारे आकाश मण्डल पर इतनी प्रचण्डता से नहीं चमका, (जैसे अव चमकेगा), और न ही आगामी ४७ वर्षों तक फिर वह तद्वत् देदीप्यमान होगा।"

[४३] "'युद्ध के देवता' ने युद्ध के आह्वान को, जो उसे यों तिरस्कार पूर्वक दिया गया था, स्वीकार किया; क्यों कि कभी कभी उस में भी उपहास की भावना आ जाया करती है। रूस् और तुर्की का युद्ध, जिस की घोषणा २४-४-१८७७ को हुई, और जिस के विषय में युरोपीय नीतिज्ञ पहले यही समझते रहे, कि रूस् को 'प्रातः-भ्रमण' की भान्ति अनायास ही सफलता मिल जायगी, शीघ्रमेव असम्भावित उत्कटता के लक्षण धारण कर गया। ठीक जिस दिन मंगल ने अपनी विहित गृह-शोभा (domal dignity), मेष राशि, में पदार्पण किया, **प्लेव्ना** (Plevna) झंझावात में अपहृत हो गई, जिस के संग मार-काट का वह काण्ड चला, कि इतिहास में उस का सदृश नहीं मिलता। विगत **नैपोलियन्** के युद्ध (तथा प्रथम और द्वितीय महायुद्ध) क्या थे? यों समझना चाहिए, कि वे ग्रह गण के गोलमोल से उत्तर थे, उन विद्याडम्बरी पण्डितों को, जो उन के मनुष्य-जाति के भाग्य पर प्रभावों के विषय में सन्देह करते थे।"

ज्यौतिष के विद्यार्थियों ने सम्यक् सिद्ध कर दिया है, कि भूकम्प उस उस समय आते हैं, जब ग्रहों की महत्वपूर्ण युतियाँ (conjunctions) लग्न पर, अथवा याम्योत्तर वृत्त (कोटि) पर, हों। भूकम्प के कारणों के सम्बन्ध में ज्यौतिषिकों का सिद्धान्त अध्ययन करने से हमारे वैज्ञानिकों

---

[४३] 'ज्यौतिष की पाठ्य-पुस्तक'. लेखक, डॉ० ए० जे० पियर्स।

की आँखें खुल जातीं, और "वह विचित्र-सा घपला रुक जाता, जो कारण-कार्य के सम्बन्ध में हमारे उन प्रमुख शिक्षकों ने खड़ा कर रखा है," जो गम्भीरता-से यही युक्ति दिए जा रहे हैं, कि भूकम्पों का कारण भूगर्भ के भीतर गड़बड़ का होना ही है। जब ग्रहों की युतियाँ होती हैं, तो उन की शक्तियाँ मिल कर पृथिवी को आकृष्ट करती हैं, और भूकम्प आ जाता है।

धूम-केतु भविष्य का निरूपण करते हैं

[४४] "श्री० **जॉन् हर्शल्** (Sir John Herschel) ने इस कथन को, कि धूम-केतु 'अधिक तप्त ग्रीष्मर्तु, जन-मारियाँ, इत्यादि' उत्पन्न करते हैं, 'सर्वथा अनर्गल प्रलाप' बताया था। तथापि इतिहास ऐसे दैवयोगों से भरपूर है, कि बड़े बड़े धूम-केतुओं के उदय होने के संग ही जनमारियाँ फैलीं, युद्ध हुए, राज-पाट उलट-पुलट हुए, दुर्भिक्ष पड़े, तथा भूचाल आए। अतः हम एक प्रयोग-सिद्ध (empirical) नियम के आधार पर यह कहने का साहस कर सकते हैं, कि जब एक बृहत्-काय धूम-केतु, अथवा अनेक आकाश पर प्रकट होंगे, सुविशेष महत्वपूर्ण घटनाएँ पीछे से अवश्य घटेंगी। पर इस का तात्पर्य यह कदाचित् नहीं समझना चाहिए, कि यह मानना आवश्यक है, कि धूम-केतु ऐसी घटनाओं के **कारण** हैं ; क्यों कि ये सभी घटनाएँ किसी अन्य साँझे प्राकृतिक कारण का परिणाम हो सकती हैं।"

---

[४४] तत्रैव।

शेक्स्पियर् (Shakespeare) ने स्वज्ञा से ही (intuitively) धूम-केतुओं के प्रकट होने की सार्थकता को अवगत कर लिया होगा, जैसा कि इन पंक्तियों से ध्वनित होता है :—

> " भिखारी मरें तो कहीं धूम-केतु दिखाई नहीं पड़ते ; राजपुत्रों के स्वर्गारोहण की घोषणा साक्षात् आकाश-पिण्ड ज्वलन्त हो कर करते हैं। "

वराह-मिहिर ने अपनी **बृहत् संहिता** में धूमकेतुओं के प्रश्न पर भूरी विवेचना की है। उन्हों ने इन (कभी कभार) काले-काले (occasionally) दृश्यमान आगन्तुकों के लिए 'केतु' शब्द का प्रयोग किया है। उन के प्रभाव सामान्यतः ज्योतिश्चक्र की राशि-विशेष में उन की स्थितियों पर निर्भर होते हैं। नीचे दी हुई **दैवयौगिक–घटनाओं** (coincidences) की सूची किसी भी स्वच्छ-चित्त आलोचक को इस बात का समाधान करा सकती है, कि धूम-केतुओं का उदय होना एक वैज्ञानिक (?) मनोरञ्जन का विषय ही नहीं, वरन् कुछ और भी सूचित करता है।

सप्तम प्रकरण

ऐतिहासिक उदाहरण

डेनियल् डीफ़ो (Daniel Defoe) अपनी '**महामारी-वर्ष पत्रिका**' (Journal of the Plague Year) में वर्णन करते हैं, कि लन्दन में हिल-चल कितनी वढ़ गई थी, जव १६६५ की भीषण महामारी अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही थी। कारण यह था, कि कुछ ही सप्ताह पूर्व एक चमकदार धूम-केतु उदय हो चुका था। यह धूम-केतु "मन्द, अप्रतिभ-से वर्ण" का था, और इस की गति "अत्यन्त गहन, गम्भीर और मंथर" थी, जिस का अभिप्राय यह था, कि "एक गुरूत्वपूर्ण निर्णय,—मन्द-गति परन्तु कड़ा, भयंकर और भीषण,—पहले ही आरम्भ हो चुका है।" १६६६ में, विराट् अग्नि-काण्डसे कुछ कालपूर्व, एक दूसरा धूम-केतु प्रकट हुआ, जिस में "सत्वर, द्रुत-गित और आग्नेय" निर्णय के लक्षण पाए जाते थे। उन्हों ने लिखा है, कि वहुत से लोग कहा करते थे "कि ये दोनों धूम-केतु नगर के ठीक ऊपर से अतिक्रान्त हुए हैं, और वे घरों के इतना समीप आ गए हैं कि यह स्पष्ट है, कि वे केवल इस नगर पर ही कोई विचित्र विपत्ति ढाएँगे।"

अगस्त, ११९३, (ईसा-पूर्व) मिथुन राशि में एक अत्यन्त क्रूर-दृष्टि धूम-केतु प्रकट हुआ था, जो समस्त मिश्र देश में दिखाई देता था। उस के शीघ्र पश्चात् महाराजा **अमेनेमस्** (Amenemas) का देहान्त हो गया। ईसा-पूर्व

४७८ में, यूनानियों ने एक धूम-केतु देखा, जो एक शृङ्ग की न्यायी वक्राकृति था, और २२ दिन तक दीखता रहा। इसी समय में **सलामीज़्** (Salamis) के स्थान पर सामुद्रिक समर हुए। ईसा-पूर्व ४३० में एक आग्नेय और रक्तवर्ण धूम-केतु एथन्ज़् (Athens) के ऊपर ७५ दिन तक मण्डलाता रहा, और **पॅलोपोन्नीशियन्** (Peloponnesian) युद्ध का सूत्रपात हुआ। ई० पू० ३७१ में एक वहुत वड़ा धूम-केतु उदय हुआ, जो एक किरण के समान था, और क्षितिज पर ६० अंशों तक फैला हुआ था। यह उस समय की वात है, कि जव **अख़ाइया** (Achaia) में वाढ़ और भूकम्प आए थे। ई० पू० ३५६ में, **महान् अलक्ष्येन्द्र** (Alexander) के जन्म पर, एक धूमकेतु प्रकट हुआ, जो पहले लोमश और श्मश्रुल (bearded) था, और पीछे से शूलाकार हो गया। ई० पू० १३४ में पोण्टस् के राजा **मिथ्रिडेट्स्** (Mithridates, मित्रदत्त) के जन्म पर एक असाधारण आकार और आभा का धूम-केतु दिखाई देता था। ई० पू० १८३ में एक धूम-केतु का **सीपियो अफ़्रीकानस्** (Scipio Africanus) की मृत्यु, और पुनः **सीज़र्** की मृत्यु, के साथ सन्निपात हुआ। यह मीनराशि में निकलता था, और सूर्य के समान उज्ज्वल था। ईसा-पश्चात् ७१ में, एक वड़ा धूम-केतु कन्याराशि में उदय हुआ, जो कि **जेरूसलेम्** (Jerusalem) नगर का अधिपति समझा जाता था। इस धूम-केतु ने नगर के ठीक ऊपर एक खड्ग का रूप धारण कर लिया। यह घटना ईस्टर् रविवार, ८ अप्रैल, को घटी और यह पूरा वर्ष, नगर पर **टाइटस्** (Titus) के अधिकार जमा

लेने तक, दिखाई देता रहा। ईसा-पश्चात् २१८ में एक महान् धूम-केतु अठारह दिन तक मीनराशि में उदय होता रहा ; इतो मध्ये **हीलियोगबालस्** (Heliogabalus) **मेक्रिमस्** (Macrimus) को पराजित करके रोम का महाराजाधिराज बन बैठा। ३२३ में कन्याराशि में एक धूम-केतु निकला, जिस के साथ ही **कॉन्स्टैण्टाइन्** (Constantine) ने **लुसीनियस्** (Lucinius) पर विजय पाई, एवं ३३७ में एक मेषराशि भोगी भीषण वैभवशाली धूम-केतु के साथ **कॉन्स्टैण्टाइन्** की मृत्यु का संयोग हुआ। ३९२ में, एक छोटा-सा, पर चमकीला, धूम-केतु रोम के ऊपर आकाश में प्रकट हुआ। उसी रात सम्राट् **वैलण्टाईनियन्** को राज-गृह में गला घूँट कर मार डाला गया। ४९३ में एक महान् धूम-केतु कन्याराशि में था ; क्यों कि **अलारक्** (Alarac) के अधीन गॉथ् जाति ने जब पहले दो आक्रमणों में (३९५ और ४०२ में) रोम को लूटा था, तो एक कृपाणाकार धूम-केतु चढ़ा था। ४२३ में एक भीषण धूम-केतु निकला, जिस ने रोम और पारसीकों के पारस्पारिक युद्ध के विषय में पूर्व-सूचना दी थी। ४५५ में रोम **जेन्सॅरिक्** (Genseric) द्वारा लूटा गया, जब कि एक भारी धूम-केतु उदित था। दिसम्बर, ५३९, में धनु में एक वृहत् धूम-केतु का उदय हुआ, जो लगभग चालीस दिन रहा ; इति-मध्य में तीन लाख लोग अण्टीयोक् (Antioch) के स्थान पर भूकम्प द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुए। ५४६ में एक धूम-केतु, जो भाले की-सी आकृति का था, कॉन्स्टैण्टीनोपल् (Constantinople) के नगर पर देखा गया, और जब तक वह रहा, प्रतिदिन दश-

सहस्र लोग महामारी (प्लेग्) से मरते रहे। ५७० में एक धूम-केतु प्रकट हुआ, जब कि इटली पर **लोम्बार्डज़्** (Lombards) ने अपनी आयत्तता जमा ली। सितम्बर, ६०२ में एक खड्गाकार धूम-केतु कॉन्स्टैण्टीनोपल् के ऊपर डोलता रहा, और सम्राट् **मौरिस्** (Maurice) की हत्या के रूप में उस का फल निकला। मई, ६०४ में एक देदीप्यमान धूम-केतु रोम में दिखाई दिया, और **महान् ग्रगोरी** (Gregory) का देहान्त हो गया। ६१३ में एक अग्निमय धूम-केतु, जो एक मास से भी अधिक समय एक दिखाई देता रहा, रोम के ऊपर मण्डलाता रहा, और पारस्य युद्ध का ी गणेश हुआ। ८०० में, एक विराट्, पर सौम्य और सम, धूम-केतु ठीक उस समय दृष्टि-गोचर हुआ, जब **शार्ले-मेन्** (Charlemagne) का राज्य हस्तान्तरित (transfer) हुआ, और एक इतर ८१४ के नवम्बर में निकला, जिस के शीघ्र उपरान्त उस का देहावसान हुआ। ११०६ में पूर्व दिशा में एक धूम-केतु दिखाई पड़ा, जो जाज्वल्यमान दीपकाओं और आग्नेयास्त्रों की न्यायी किरणों को प्रसारित करता था। यहीं से विनाशकारी धर्मयुद्धों (Crusades) का श्री गणेश हुआ। जुलाई, १२६४, में वृष राशि के अन्दर एक सर्वथा अद्वितीय महिष्ठता वाले धूम-केतु का आविर्भाव हुआ। यह तीन मास तक रहा, और जिस रात **पोप् अरबन् चतुर्थ** (Pope Urban the Fourth) का स्वर्गारोहण हुआ, वह धूम-केतु भी लुप्त हो गया। जून, १४५६, का धूम-केतु, (जो **हैली** का धूम-केतु माना जाता है), तुरुष्कों द्वारा कॉन्स्टैण्टीनोपल् पर अधिकरण का साक्षी बना। **हैली** के

धूमकेतु का पुनरुदय १५३१ में हुआ, और इस के पश्चात् चित्रमय-ज्वर (spotted fever) समस्त यूरोप में फैला और लिज़्बन् के प्रसिद्ध भूकम्प में ३०,००० से भी ऊपर लोगों की मृत्यु हुई। जब वही हैली का धूम-केतु १६८२ में पुनः प्रकट हुआ, कैटाना (Catana) एक भूकम्प में विध्वंस हुआ और ६०,००० व्यक्ति मरे। फिर १७५९ में जब वही धूम-केतु दिखाई दिया, तो त्रिपोली, सीरिया आदि में भूकम्प फूट पड़े। १९०६ में उसी धूम-केतु के उदय होने के पश्चात् एड्वर्ड् सप्तम का देहान्त हुआ। आधुनिक काल में आएँ, तो कितने ही उदाहरण ऐसे मिलेंगे जो सिद्ध करते हैं, कि धूम-केतुओं का आविर्भाव सदैव घोर अनर्थों का पूर्वगामी होता है, जिन में सर्वतोऽभिनव और साम्प्रतिक एक धूम-केतु के उदय होने पर महात्मा गान्धी का मरण था।

ज्योतिर्विदों द्वारा भयोत्पादन

यहाँ यह वर्णन करना अप्रासंगिक नहीं होगा, कि जहाँ सच्चे ज्यौतिषिकों की पूर्वोक्तियाँ ठीक सिद्ध होती रही हैं, हमारे विद्वान् ज्योतिर्विदों (astronomers) की भविष्य-वाणियों ने अनेकशः संसार को यों ही डरा दिया है। १८५६ में एक विद्वान् ज्योतिर्विद् की इस भविष्योक्ति से बड़ी खलबली-सी मच गई थी, कि १५५६ का धूम-केतु पुनः उदित होगा, और पृथिवी से टकारा जायगा। बहुत से लोग इस धूम-केतु के विषय में उद्विग्न हो कर हत बुद्धि-से होगए, यद्यपि धूम-केतु महोदय प्रकट भी न हुए!!

कार्ल्टन् (Carlton) विश्व-विद्यालय के निर्देशक, **प्रो० कॉरिगन्** (Prof. Corrigon) ने एक वार 'लोकप्रिय ज्योतिर्विद्या' (Popular Astronomy) नामक पत्रिका के अन्दर एक लेख में कहा, कि "सूर्य से एक नवीन ग्रह के टूट कर अलग हो जाने से संसार का निश्चित विनाश समीप ही है ; क्यों कि ग्रह के पृथक् होने से एक भयानक विस्फोटन होगा, जो सम्भवतः पृथिवी को टुकड़े टुकड़े कर देगा, एवं जल में, और स्थल पर, सब प्रकार की देहधारी सृष्टि को अवश्य-मेव नष्ट कर देगा।" ये प्रोफ़ॅस्सर् महोदय एक चालाक व्यक्ति थे, एवं दैवज्ञों से अधिक व्यवहार-कुशल निकले। सो उन की गणितविद्या पर आश्रित गणनाओं ने उन्हें उस ग्रह के सूर्य से पृथक् होने के ठीक समय के विषय में तो सूचना देदी, पर यह न वताया, कि इस दुर्घटना के घटित होने की सम्भव तिथि कौन सी है!! ऑस्ट्रिया के **डॉ० फ़ल्बे** (Falbe) ने संसार के अन्त का निश्चित काल १३ नवम्वर, १८९९, साढ़े तीन वजे उत्तराह्ण, निर्धारित किया था। अव हम १९५५ के अन्त तक पहुँच चुके हैं, और परमात्मा का धन्यवाद करना चाहिए, कि **डॉ० फ़ल्बे** की भविष्य-वाणी मिथ्या सिद्ध हुई। हाँ, **लॉर्ड कॅल्विन्** (Lord Kelvin) अधिक सतर्क रहे। उन्हों ने, संसार का नाश कव होगा, इस के विषय में अपने आप को किसी तिथि-विशेष से संवद्ध नहीं किया। उन्हों ने प्राण-वायु (oxygen) के अभाव वश भूमितल पर सव सजीव भूतों के विनाश की अवधि प्राय चार शताब्दियाँ नियत की थी, क्यों कि यह अमूल्य 'कोई वस्तु' (प्राण-वायु) उस समय तक

मनुष्य और औद्योगिक निर्माणियों अथवा कार्य-हट्टों (workshops) द्वारा समाप्त हो चुके गी। एक और भी भय-उत्पादक हुए हैं, **श्री० गोरे** नाम के, जो 'राजकीय ज्योतिर्वित् समिति' (Royal Astronomical Society) से सम्बद्ध थे। संसार के सत्वर नाश के विषय में **श्रीयुत गोरे** कहते हैं:

> "सूर्य एक ऐसे तारे से टकराने वाला है, जो प्रशमित हो चुका है और अन्तरिक्ष के अंधकार में डोल रहा है। प्राय ११·४ वर्षों में उस का अन्तर घटते घटते चार अरव, अथवा चार सौ करोड़, मील रह जायगा, और प्राय चौदह वर्षों में वह अन्धकारमय पिण्ड वारुणी के वृत्त तक पहुँच जायगा ; प्रत्युत यो कहना चाहिए, कि यह हम से उतनी ही दूरी पर होगा, जितनी पर वारुणी (Uranus) है, क्यों कि इस का मार्ग ग्रह के वृत्त को काटेगा नहीं। दोनों ग्रह एक घण्टे के अन्दर अन्दर पिघल कर, और उवल कर, वाति (gas) की अवस्था में चले जाएँगे, एवं अत्यधिक मात्रा में ताप का सृजन होगा, जो न केवल पृथिवी, वरञ्च सौर-परिवार के अधिकांश ग्रहों को विध्वंस कर देने के लिए पर्याप्त होगा।"

'ज्यौतिष-पत्रिका' (The Astrological Magazine) के दिसम्वर, १८९८, अंक में— **डॉ० फ़ल्बे** द्वारा नियत संसार के संहार-काल से एक वर्ष पूर्व—और मई, १९०६, अंक में —**श्री० गोरे** द्वारा नियत समय से कई वर्ष पूर्व—**प्रो० राव** ने इन भय-संचारकों के विरुद्ध वड़े कड़े शव्दों में लिखा था, और जनता को विश्वास दिलाया था, कि इन भ्रान्ति-शील वैज्ञानिकों की पूर्वोक्तियों की ओर कोई ध्यान न दें।

एक और बुद्धिमान् 'सॉलोमन्' (निस्सन्देह एक ज्योतिर्विद्) यह आश्चर्यजनक पूर्वोक्ति ले कर निकले कि १७ और २० दिसम्बर्, १९१९, के बीच अत्यन्त कौतुकावह घटनाएँ घटने वाली हैं। **प्रो० अल्बर्ट पोर्टर्** (Prof. Albert Porter) की इस भविष्य-वाणी का पूर्ण उल्लेख करने से इस पुस्तक के पन्नों पर अनावश्यक दवाव पड़ेगा। वे महाशय यहाँ तक कह गए, कि छः ग्रहों के संगम (conjunction) के कारण, जो सूर्य को मिल कर आकृष्ट करेंगे, समस्त सूर्य-परिवार का संतुलन अत्यन्त स्खलित हो जायगा। उस समय भी **प्रो० राव** जनता के परित्राणके लिए आए, और सब संशयों का निवारण होगया, जब उन्हों ने 'ज्यौतिष-पत्रिका' (The Astrological Magazine) के अक्तूबर, १९३९, अंक में डंके की चोट से घोषण की, कि हिन्दु-गणनानुसार कोई योग ऐसे नहीं मिलते जो सूर्य-परिवार के समतुलन को स्खलित करें। **प्रो० राव** ने कहा :

> "इस मूढ़ प्रोफ़ॅस्सर् का यह कहने से तात्पर्य क्या है, कि अमुक दिन छः वड़े वड़े ग्रह एक दूसरे से २६ अंश के अन्तर के अन्दर अन्दर ही हैं?" वे आगे चलकर फिर यों कहते हैं :

> "हम जनता को विश्वास दिलाते हैं, कि कोई ऐसी प्रलय नहीं होगी; वे चुपचाप अपना काम करते जाएँ।"

न्याय-निष्ठ क्रोध

डा० पियर्स (Dr. Pearce) का कथन है:

"यदि इन आपदों के विषय में किसी दैवज्ञ ने भविष्य वाणी की होती, और ये आशंकाएँ निराधार सिद्ध होती; तो समाचार-पत्र उसे न्याय-निष्ठ क्रोध और तिरस्कार की दृष्टि से देखते। ज्योतिर्विदों (Astronomers) की यें असफलता उन्हें स्मरण तक नहीं। और यही वात मर्यादासंगतविज्ञान की मर्यादारहित विज्ञान से विशिष्टता सूचित करती है।"

ज्योतिर्विद् यह प्रतिज्ञा (claim) करते हैं, कि उन्हों ने धूम-केतुओं और उल्काओं (shooting stars) के मध्य में सम्वन्ध का जो एक-मात्र सूत्र है, वह पा लिया है। पर इदानीं यावत् वे धूम-केतुओं के मूल, वास्तविक वनावट, तथा उन के आकार में विस्मयकारक परिवर्तनों के कारणों का निराकरण करने में सर्वथा असफल रहे हैं।

रूपर्ट ग्लीडो (Rupert Gleadow) ने कुछ रोचक साक्ष्य सौर और चान्द्रप्रभावों के विषय में उपपन्न किए हैं। उन्हों ने ६,९६० प्रतिष्ठित व्यक्तियों की जन्म-तिथियाँ इकट्ठीं कीं और उन्हें व्यवसायों (professions) के अनुसार क्रमवद्ध किया। निम्नलिखित सारिणी यह दिखाती है, कि कवियों, राजनीतिज्ञों, सैनिकों, औपन्यासिकों, गणितज्ञों और ऐतिहासिकों की समस्त संख्या कितनी थी, और उन में से कितने ऐसे समय पर उत्पन्न हुए, जव सूर्य मकर, कुम्भ, मीन और मेष, इन चार राशियों में से किसी एक में था।

समस्त संख्या	मकर	कुम्भ	मीन	मेष
५५० कवि	५४	५६	६३	३९
८९१ राजनीतिज्ञ	७२	७८	६९	८४
३३६ सैनिक	२६	३४	२६	२६
३८७ औपन्यासिक	२६	४५	३७	३५
३८८ गणितज्ञ	३५	२७	४२	३३
५३४ ऐतिहासिक	६३	५१	५१	४२

"यहाँ यह देखा जा सकता है, कि कवियों की सामान्य प्रवृत्ति मकर से मीन की ओर बहु-संख्यक होने की दिखाई देती है ; उन की संख्या में एक तृतीयांश से भी अधिक की न्यूनता (मीन से मेष तक पहुँचते हुए), ध्यान से देखने योग्य बात है। दूसरी ओर, मिथुन (६२) और कर्क (६७) के अपवाद सहित, मीन के अन्तर्गत राज-नीतिज्ञों की संख्या और सब राशियों से न्यून है ; एवं मेष के अंन्तर्गत जो ८४ की संख्या है, उन्हें केवल तुला के अन्तर्गत ८५ की संख्या ही अतिशयित करती है। पुनश्च, सैनिक मीन में केवल २६ हैं, जो कि उन का लघुतम योग है। औपन्यासिक मकर में अल्पतम संख्या में हैं और कुम्भ में उन की संख्या अधिकतम है। इस से यह भी स्पष्ट हो जाता

है, कि गणितज्ञ और समयों की अपेक्षा कुम्भ में क्यों विरले ही होते हैं ; ऐतिहासिकों की भान्ति, उन्हें मकर राशि ही अधिक रोचती है। वस्तुतः, यह कोई आश्चर्य की वात नहीं है, कि विद्वत्तापूर्ण वृत्तियाँ (professions) सव से अधिक संख्या में मकर के अन्तर्गत आती हैं ; कारण यह, कि जन साधारण की कल्पना में वैज्ञानिक और अपगत-मना प्राध्यापक का जो स्वरूप आता है, वह मकरजाति से मिलते-जुलते व्यङ्ग-चित्र का-सा होता है।"

ज्यौतिष एक निरवद्य विद्या है

'साहित्यिक विश्व-कोष' नाम पुस्तक-माला के प्रसिद्ध सम्पादक, **डॉ० रिचर्ड गार्नेट्** का मत है, कि ज्योतिर्विद्या (Astronomy) के एक मात्र अपवाद को छोड़ कर, प्रदत्त-तथ्यों (data) की दृष्टि से, निरवद्य (ठीक) विज्ञानों में सव से निरवद्य (exact) ज्यौतिष है। उन के कुछ अन्य कथन इस प्रकार हैं:

"उस की (ज्यौतिषिक की) कला के सिद्धान्त उसे मूलतः अत्यन्त पुरातन काल से (परम्परागत सम्पत्ति की भान्ति) प्राप्त हुए हैं ; उन का प्रकाशन सहस्रों पुस्तकों द्वारा हुआ है, एवं वे समस्त संसार द्वारा परीक्षा किए जाने को खुले पड़े हैं। उस के गणना करने के ढंग अंकगणित से अधिक रहस्यपूर्ण, वा गुह्य, नहीं हैं। जहां तक मानव-जाति पर इस के उपयोग का संवंध है, इस पद्धति को यह विचित्र गर्व है, कि यह वहाँ भी नियम और विधि को सिंहासनारूढ़ करती है, जहाँ अन्यथा कोई व्यवस्था मानी

नहीं जाती, एवं यह 'प्रकृति से परे की' (preternatural) किसी वस्तु के लिए कोई द्वार खुला नहीं छोड़ती।" उन्हों ने अपने एक लेख 'आत्मा और तारागण' में जो १८८० की लन्दन विश्वविद्यालय पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, सम्राट् **पॉल्, जॉर्ज तृतीय, गुस्टावस् चतुर्थ, सम्राजी शार्लॉइन्**, स्पेन् के **चार्ल्स द्वितीय**, एवं अनेकों अन्य उन्मत्त शासकों आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के उदाहरण समुपस्थित किए हैं, और योग्यतापूर्वक दर्शाया है, कि जव मंगल और शनि जन्मकुण्डली में विशेष स्थानों पर अधिरूढ़ हों, तो क्यों कर मानसिक रोगों (अथवा आधियों) के हो जाने की आशंका होती है। उन्हों ने जिसे 'महती मानसिक शक्ति सहित उत्केन्द्रता (eccentricity)' कहा है, उस के उदाहरण भी दिए हैं, एवं जिन जन्मकुण्डलियों पर उन्हों ने विचार किया है, वे **वॉल्टेर्** (Voltaire), **फ़ीब्र** (Feebre), **महा पादरी व्हेट्ली** (Archbishop Whately), **ग्लैड्स्टोन्** (Gladestone) और **सेण्ट् साइमन्** (Saint Simon) की हैं, जिन में से प्रत्येक में उन्हों ने वुध की, मङ्गल तथा वारुणी (Uranus) के साथ कुछ न कुछ सन्निधि पाई है। उन्हों ने अपने प्रसिद्ध लेख का उपसंहार निम्न-लिखित शब्दों से किया है :

"हम इस से अधिक कोई प्रतिज्ञा (claim) नहीं करते, कि हम ने एक '**प्रथम दर्शने**' (*prima facie*) समुचित जचने वाला अभियोग (case) स्थापित किया है, एवं एक विशेष पक्ष के विरुद्ध सोचने की स्वतन्त्रता प्राप्त

की है। इस प्रकार के चिन्तन, यदि अपने समुचित परिणाम तक पहुँचाए जाएँ, तो मानव विचारधारा में एक ऐसी क्रान्ति लाने का कारण बनेंगे, जो इस कौतूहलजनक युग के सब आविष्कारों से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण होगी।"

रिचर्ड गार्नेट् (Richard Garnet) कोई दैवज्ञ नहीं थे। वे ब्रिटिश् अद्भुतागार (Museum) के अधिष्ठाता थे, एवं विज्ञान के कतिपय क्षेत्रों का अध्ययन कर चुके थे। अतः उन के निष्कर्षों की ओर ज्यौतिष के प्रत्येक आलोचक को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए।

शुक्र तथा काम-वासना

ज्यौतिष में शुक्र को विवाह तथा कामतत्व का स्वामी माना जाता है। उस की सप्तम गृह में उपस्थिति विषयवासना को उत्तेजित करती है, और मनुष्य को अत्यन्त कामुक बना देती है। मंगल का शुक्र के साथ संगम एक से अधिक विवाहों का, अथवा दाम्पत्य-जीवन में सुख के अभाव आदि का, द्योतक है। यह तथ्य लगभग प्रत्येक ऐसे जन्मपत्र द्वारा समर्थित हुआ है, जिस की हम ने परीक्षा की है, और जिस में मंगल-शुक्र का ग्रस्त होना पाया गया है। हम ने मंगल-शुक्र संगम वाले जिन साठ जन्मपत्रों का अध्ययन किया है, उन में १८ उदाहरण भीषण कलह और विच्छेद के ऐसे हैं, कि जिन में मंगल और शुक्र की द्वितीय गृह में ठीक युति है। चालीस उदाहरणों मे एक से अधिक विवाह हुए हैं। अवशिष्ट दो की दशा में कोई असामान्यता दृष्टिगोचर नहीं हुई। अपि तु, यह सरल सत्य अवगत करने के लिए कोई उच्च-कोटि की मेधा अभिलषित

नहीं है, कि मनो-विषाद (melancholia) के वहुसंख्यक उदाहरणों में शनैश्चर वड़ा वलिष्ठ होगा।

शुक्र का शनि, मंगल अथवा राहु के संग मिलाप सदैव या तो पारिवारिक जीवन में अशान्ति का प्रतीक है, अथवा अतीव कामुकता का, जिस से मनुष्य अवैधरूपेण कामवासना की तृप्ति करने पर विवश हो जाता है। यद्यपि मैं सहृदय पाठक गण के मन पर ज्यौतिषीय कला सम्वन्धी परिभाषाओं का वर्णन करके कोईभार डालना नहीं चाहता, तो भी मैं उन का ध्यान निम्न-लिखित दो जन्मकुण्डलियों की ओर आकृष्ट किया चाहता हूँ, जो मैं ने अपने पास संगृहीत सैकड़ों में निकाली हैं, और जो विशेष ज्यौतिषीय उक्तियों को अपने एक अनोखे ही ढंग से प्रदर्शित करती हैं।

प्रथम कुण्डली में, शुक्र का राहु से मिलाप है, और दो क्रूर ग्रह इस संगम के दोनों ओर हैं। इस व्यक्ति की स्त्री सदैव रुग्ण रहती थी, और अन्त में वह मर गई। उस ने दूसरी स्त्री से साक्षात् विवाह तो नहीं किया, पर व्यभिचार में लीन रहा। उसे मैथुनोत्पन्न रोग हो गए, एवं उसे तनिक भी मानसिक शान्ति प्राप्त न थी।

दूसरी कुण्डली में मंगल और शुक्र का पुनः संगम है। चन्द्र और वुध, जो मन के अधिपति हैं, वे यथाक्रम शनि, एवं सूर्य और राहू की दृष्टि तथा संगम में हैं। इस पुरुष ने दो वार विवाह किया। उस के मन की प्रवृत्ति विषयों की ओर वहुत थी, एवं वह कई प्रकार की स्त्री-घर्षणोत्पन्न व्याधियों से आक्रान्त होगया और अत्यन्त दुःख का भागी वना। उस की

दोनों स्त्रियाँ उस से पूर्व ही मर गईं। उसे किसी प्रकार का पारिवारिक सुख न मिला।

		सूर्य चन्द्र	शुक्र राहु
	प्रथम कुण्डली		मंगल

	चन्द्र		
शनि	द्वितीय कुण्डली		
	सूर्य वुध राहु	मंगल शुक्र	

इस प्रकार उदाहरण आगे से आगे दिए जा सकते हैं, जो यह दिखाते हैं, कि शुक्र, मंगल और शनि की विशेष प्राकारिक सन्निधि होने से सदैव लैङ्ग-उन्मार्ग-शीलता (sexual aberration) और दाम्पत्यविषमता उत्पन्न होती है। यदि ऐसे क्लिष्ट योग बच्चों की जन्मकुण्डलियों में हों, तो वे इस वात के **सूचक** समझे जाने चाहिएँ, कि मानसिक विकास की प्रवृत्ति किस ओर है, एवं एक कठोर नैतिक और धार्मिक वातावरण में उन का पालन-पोषण होने से वे वड़े उपयोगी नागरिक वन सकते हैं।

एक समान जन्म-तिथियाँ

[४५] "हाँ, युग्म-जातकों का उदाहरण प्राय ज्यौतिष

[४५] 'दैनिक ज्यौतिष' में रूपर्ट ग्लीडो।

के विरुद्ध एक विशिष्ट प्रकार की युक्ति के रूप में उपस्थित किया जाता है।" जब जुड़वाँ बच्चों, अर्थात् 'जौड़ों', का प्रश्न ठीक प्रकार समझ में आ जाय, तो यह युक्ति तो वस्तुतः ज्यौतिष के पक्ष में जायगी। युग्म बच्चे कभी कभी एक-से होते हैं, और कभी कभी भिन्न। कोई कोई ऐसे बच्चे एक से गुणों वाले होते हैं, कोई कोई भिन्न। ये भेद प्राय जन्म के मुहूर्त्त में थोड़ा सा अन्तर होने के कारण होता है। 'यमज' अथवा 'यमक' शब्द (twins) का अर्थ है 'दो सत्ताओं का एक-से ग्रह-योगों के अधीन प्रादुर्भाव होना'। यह भाव इतने व्यापक अर्थों में लिया जाना चाहिए, कि इस के अन्तर्गत ऐसे दो बच्चे भी आ जाएँ, जो (यदि ठीक ठीक नहीं तो) प्राय एक ही समय पर उत्पन्न हों, चाहे उन के माता-पिता कोई भी हों, अथवा उन के जन्म की परिस्थिति और दशाएँ कैसी भी क्यों न हों। एतद्विषयक अनेकों विचित्र उदाहरण हमारे देखने में आए हैं। वास्तव में, मेरे पास दो और व्यक्तियों के जन्मपत्र हैं, जो उसी दिन उत्पन्न हुए थे, जिस दिन मैं, पर भिन्न समयों पर। एक डॉक्टर् है, दूसरा एक सेठ है, और तीसरा जो कुछ है, वह पाठकों को विदित ही है। देखने वाली बात यह है, कि दूसरे दोनों व्यक्तियों के कुछ एक महत्वपूर्ण अतीत अनुभव मेरे अपनों के समान्तराल हैं। सोलह फ़र्वरी, १९३७, को एक अन्तरराष्ट्रीय समाचार डिट्रॉय् (Detroit) से आया था, जिस में कहा गया था, कि दो सतरह वर्ष की, और हाईस्कूल् में पढ़ने वाली, लड़कियाँ पाई गई हैं, जो एक ही वर्ष में एक ही दिन, २२-९-१९२० को, दो घण्टे के अन्तर से उत्पन्न हुई थीं, पर विभिन्न देशों में। उन

की न केवल जन्म तिथि और नाम एक ही हैं, वरन् उन की मुखाकृति भी एकसी है। दोनों प्यानो (piano) बजाती हैं, एवं दोनों सिद्ध-हस्त तैराक हैं।

एक और उदाहरण इस प्रसंग में यह है:

दो मनुष्य १७-४-१९०२ को उत्पन्न हुए, एक १२-१५ पूर्वाह्न समय (बनारस) और दूसरा १०-३८ उत्तराह्न समय (तञ्जौर)। जन्म के ठीक समयों में लगभग १० घण्टे का अन्तर है। तथापि यह देखा गया है, कि उन के जीवन में निम्न-लिखित विस्मयकारक सादृश्य हैं।

(अ) दोनों के गले में पुरानी (चिरस्थित) खाँसी की सी दशा रहती है।

(आ) दोनों की आखों की ज्योतिः अपवाद-रूपेण तीव्र है।

(इ) दोनों के पिता ठेकेदार हैं।

(ई) दोनों के पितामहों के पावों को दुर्घटना में चोटें आईं, जिन के विषाक्त हो जाने से उन के देहान्त हो गए।

(उ) उन की पितामहियों का देहान्त उस समय हुआ, जब उन के पिता पाँच वर्ष की आयु के थे।

(ऊ) दोनों के दो-दो भगिनियाँ और एक-एक भ्राता हैं।

(ऋ) दोनों को ज्यौतिष के वैज्ञानिक अध्ययन में रुचि है।

पाठकों को यह जानना भी रुचिकर होगा, कि **ऍमर्सन्** (Emerson) और **लिट्टन्** (Lytton) दोनों क्रमशः १-१८ उत्तराह्न समय (बोज्टन् में) और ८ वजे पूर्वाह्न समय (लन्दन में), २५-५-१८०३ को उत्पन्न हुए थे। **ऍमर्सन्** और **लिट्टन्** दोनों विशिष्ट साहित्यकार बने। दोनों ने अपनी समकालीन राजनीति को प्रभावित किया। दोनों ने जीवन में दीर्घ काल पर्यन्त काव्य रचा, और प्रकाशित किया। दोनों को साहित्य-सेवा की जीवन-चर्य्या अपनाने की स्फुर्ति माता की ओर से प्राप्त हुई। **ऍमर्सन्** के दशम गृह में बुद्धि का ग्रह, बुध है, जो कि अपने निजी स्थान पर है, और दार्शनिक ग्रह बृहस्पति लग्न में है। जब कि **लिट्टन्** के दशम में काम-ग्रह शुक्र है, और भावुक ग्रह चन्द्र लग्न में पड़ा है। यहां ही भेद पड़ता है। लग्न और दशम पर क्रमशः बृहस्पति और बुध का प्रभाव होने के कारण, **ऍमर्सन्** का कार्यक्षेत्र केवल दर्शनशास्त्र (philosophy) तक ही परिमित रहा, और उन्हों ने केवल कुछ गिने-चुने लोगों के लिए ही लिखा—उन के लिए, जो गम्भीरता—पूर्वक चिन्तन करने को उद्यत और इच्छुक थे। दूसरी ओर, **लिट्टन्** ने जन-साधारण के लिए लिखा और अपने कार्यक्षेत्र के लिए नाटक और उपन्यास को चुना, जो कि लग्न और दशम गृह पर क्रमशः चन्द्र और शुक्र के उत्कट प्रभाव के अनुसार ही तो है। नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए, क्यों कि वे थोड़ी-बहुत समदृश्य घटनाओं को स्वल्प भेदों सहित, जो उन की प्रकृति और परिणाम में हो सकते है, सम्यक् प्रदर्शित करती हैं।

ऍमर्सन् १८२९ में सहायक-प्रचालक चुने गए, एवं **लिट्टन्** ने एक औपन्यासिक के रूप में अपनी सर्व-प्रथम ख्याति १८२८ में अपने उपन्यास 'पॅल्हम्' (Pelham) द्वारा प्राप्त की। १८३१ में लिट्टन् को अपनी पत्नी से वहुत क्लेश प्राप्त हुआ, जिस से उन्हों ने विच्छेद कर लिया, जो कि १८३६ में वैध (legal) वना। **ऍमर्सन्** की पत्नी उन से १८३७ में विछुड़ गयी। **ऍमर्सन्** की कुण्डली में वृहस्पति-शुक्र की स्थिति से उन की वौद्धिक सिद्धियों के विषय में सूचना मिलती है। उन्हों ने असहिष्णुता के निरोधार्थ, क्रिश्चियन् मत के संकुचित ईश्वर सम्वन्धी सिद्धान्तों में संशोधनार्थ, एवं दृष्टिकोण को विस्तीर्ण करने के लिए कार्य किया। १८७२ में **ऍमर्सन्** का स्वास्थ्य विगड़ गया, एवं १८८२ में वे परलोक सिधार गए, जव कि **लिट्टन्** का देहान्त १८७३ में हुआ। दोनों कुण्डलियों में अष्टम गृह की तुलनात्मक शक्तियों पर ध्यान दीजिए, जिस से उन की क्रमिक जीवनविधियों की भिन्नता निराकृत हो जाती है।

हमें अभी दो और प्रमुख कुण्डलियों पर विचार करना है, जो जन्म-तिथि के ऐक्य की अच्छी प्रतीक हैं। **अव्राहम् लिङ्कन्** (Abraham Lincoln) और **चार्ल्स डार्विन्** (Charles Darwin) एक ही दिन उत्पन्न हुए थे, अर्थात् १२-२-१८०९ को। **चार्ल्स डार्विन्** का जन्म समय विदित नहीं। **लिङ्कन् कॅण्टक्की** (Kentucky) के स्थान पर सात और ग्यारह वजे पूर्वाह्न के वीच जन्मे थे। पाश्चात्य वौद्धिक जगत् में; **लिङ्कन्** ने शारीरिक दासता का निषेध करके जो महान् कार्य

सिद्ध किया, वही **डार्विन्** ने मानसिक दासता (जड़ता) के निवारण द्वारा सिद्धकिया। प्रत्येक ने अपने विशिष्ट क्षेत्र में अपना नाम अमर किया है, जिस को भावी सन्तानें कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करेंगी। उन्हों ने अनुभव किया, एवं कार्यरूप में चरितार्थ करके दिखाया, कि वे मनुष्य मात्र के वन्धु हैं, एवं उन्हों ने अपनी समस्त शक्ति ऐसी सूचना संकलित करने में लगा दी, कि जिस से संसार भर को लाभ हो। **अब्राहम् लिङ्कन्** और **चार्ल्स डार्विन्** की जीवनियों में घनिष्ठ सादृश्य विद्यमान हैं, क्यों कि वे एक ही वर्ष और एक ही दिन उत्पन्न हुए थे। जीवन के विभिन्न विभाग, जो इन प्रभावों द्वारा सम्पर्कित होते हैं, भिन्न भिन्न घरों में ग्रहों की भुक्तियों और नवांशों से जाने जाते हैं, जो दिन के समय पर, जव कि जन्म हुआ है, निर्भर होते हैं; और इसी लिए यह अनिवार्य है, कि उन के जीवन के विशेष विभागों में जिस-जिस प्रकार का सौभाग्य वद्धा है, उस में भी तदनुरूप स्पष्ट भिन्नता पाई जाय। **लिङ्कन्** की माता, जव वह नौ वर्ष का था, तो मर गई थी। इसी प्रकार **डार्विन्** की भी। **डार्विन्** की पृथिवी के आस पास यात्रा १८३१ में आरम्भ हुई; **लिङ्कन्** ने भी एक युग-प्रसिद्ध देशाटन किया। दोनों अपने अध्ययन से धृणा करते थे। **लिङ्कन्** का वध ५६ वें वर्ष में हुआ, जव कि **डार्विन्** का अवसान ७३ वें वर्ष में। जन्म का समय भिन्न होने के कारण, जीवन के जिस-जिस काल में एक को सौभाग्य-प्राप्ति हुई, वही दूसरे के लिए दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ, एव **विपरीत क्रमशः**। हम यह दिखाने के लिए वहुत से उदाहरणों का उल्लेख कर सकते हैं, कि जो व्यक्ति एक ही तिथि, मास और वर्ष में उत्पन्न हुए, उन के जीवनों में सादृश्य विद्यमान था।

अष्टम प्रकरण

भाग्यवाद निरर्थक है

ज्यौतिष की यथार्थता की परिपुष्टि में अनेकों प्रमाण और समुपस्थित किए जा सकते हैं। पर हम समझते हैं, कि वैज्ञानिक ढंग से भविष्य-निरूपण करने की इस युक्ति-संगत पद्धति के पक्ष में हम पर्याप्ति साक्ष्य दे चुके हैं। यह विषय यदि सद्य एव ग्राह्य नहीं, तो न्यूनतोन्यून निष्पक्ष भाव से परखा जाने योग्य तो है ना। ज्यौतिष के सम्बन्ध में यह न समझना-चाहिए कि यह मध्य-कालीन मिथ्या-वैज्ञानिक .(pseudo-s ientific) घमण्ड का अवशेष (relic) मात्र है। महामना कॅप्लर् (Kepler), जिन्हों ने सौर-परिवार की बनावट सम्बन्धी गणित के वे सिद्धान्त सूत्र-बद्ध किए थे, जिन्हें तत्पश्चात् न्यूटन् (Newton) ने सिद्ध किया, ज्यौतिष के विषय में कहते हैं:

> "आकाश में घटने वाले परिवर्तनों के साथ साथ एक-तान होकर रहने वाली भूलौकिक घटनाओं की गति विधि के जो अनुभव मुझे हुए हैं, और जिन में कभी भूल नहीं हुई, उन्हों ने मुझे शिक्षा दी है, और मेरे अननुमत विश्वास को भी विवश कर दिया है।"

सॅफेरियल् (Sepharial) का कहना है, कि कॅप्लर् के ये शब्द "अपने अन्दर एक गम्भीर, अनुभव पर आश्रित, दृढविश्वास लिए हुए हैं, जो उस महान् तत्वदर्शी की विज्ञानमूलक

ख्याति के पूर्णतया अनुसार है," एवं ज्यौतिष के अज्ञानी आलोचकों का यह निरा दम्भ है, कि वे (कॅप्लर् की) "इस उक्ति का खण्डन यों करें, कि उस का ऐसा विश्वास भ्रान्ति और मूढता पर आश्रित है, अथवा ख्यात-नामा दैवज्ञों की अद्‌भुत भविष्योक्तियां केवल आकस्मिक संयोग (coincidences) हैं।" थोड़े से चिन्तन से एक सामान्य विचारशील व्यक्ति को स्वयं ही ज्ञात हो जायगा, कि आकस्मिक संयोगों की एक माला का नाम ही तो नियम है। "अज्ञानी लोग समझते हैं, कि मानों 'नियम' इस संसार के अन्दर कोई ऐसी शक्तियों हैं, जिन के सामने हमारा कोई वस नहीं चलता—हम विवश हैं। वास्तव में वे हमारे मन द्वारा घटनाओं के परस्पर सम्वन्धित अनुक्रमण (correlated successiveness), अथवा शृङ्खलावद्ध घटने, की अनुभूति (perception) ही हैं (—अर्थात् ये मानसिक अनुभव ही हैं, जो विभिन्न घटनाओं को एक दूसरी के पश्चात् क्रमशः घटती देख कर हम ने प्राप्त किए हैं)। नियम एक मानसिक कल्पना है, यह कोई वैश्व (cosmic) ऊर्जा नहीं है।"

ज्यौतिष के वैज्ञानिक मूल्य के पक्ष में एक **पूर्व तर्कित** युक्ति (a priori argument) तो एक ही ऐसी सत्य-निष्ठ भविष्योक्ति द्वारा स्थापित हो सकती थी, जो घटना के काल और प्रकृति के विषय में सत्य निकली हो; हाँ, यह दिखाना पड़ेगा—और निश्चय ही दिखाया जा सकता है,—कि वह भविष्योक्ति ग्रहयोगों की गणितशास्त्रीय गणना के

आधार पर की गई थी, एवं पूर्व-निरूपित घटना अन्यथा—किसी अन्य विधि से—जानी न जा सकती थी।

कर्म और स्वतन्त्र-चिकीर्षा

उपर्युक्त को समस्त रूपेण यों कहिए, कि ज्यौतिष न केवल एक अत्यन्त मनोरञ्जक बौद्धिक अध्ययन है, प्रत्युत यह एक अद्भुत उपकरण है, जिस से भावी घटनाओं की खाल भी खोजी जा सकती है। एक ऐतिहासिक घटना-शैली के रूप में यह अद्वितीय वस्तु है, क्यों कि यह हमें उन संस्कृतियों की मानसिक वृत्तियों का निरूपण करने की आज्ञा देती है, जो देश और काल की दृष्टि से थोड़-बहुत दूर हैं। ज्यौतिष को संकुचित अर्थों में विज्ञान नहीं कहा जा सकता, क्यों कि विज्ञान केवल भौतिक पदार्थों से सम्बन्ध रखता है। तो भी ज्यौतिष का आधार विज्ञान द्वारा प्रदत्त-तथ्यों (data) पर है। एक विषय, जो जीवित पदार्थों से सम्बन्ध रखता हो, विज्ञान नहीं कहला सकता। ज्यौतिष एक व्यावहारिक विज्ञान है, और इसी कारण से यह एक कला बन जाता है। हम ने यह भी दिखाया है, कि आधुनिक वैज्ञानिक विचार-धारा ऐसे घपले में पड़ी हुई है, कि यह पूर्व-निश्चयता वाद (determinism) और भाग्य के विरुद्ध कोई नियत मत प्रकट नहीं कर सकती। "प्रकृति के अन्दर दैवी-घटनाओं का घटना समझ को चकरा देता है, एवं निरर्थक तथा अकारण-सा प्रतीत होता है, क्यों कि प्राकृतिक घटनाओं को अवगत करना सम्भव नहीं।" तार्किक भौतिक-वादियों (Dialectical Materialists) द्वारा

जो स्पष्टीकरण इस विषय में दिया जाता है, वह दैवयोग (chance) और आवश्यकता दोनों के मेल पर अवलम्बित है। यदि आवश्यकता को कार्य-कारण के सम्बन्ध (causal relationship) के समान ही मान लिया जाय, तो कुछ एक आविर्भूतियाँ अथवा घटनाएँ भौतिक और परिस्थिति-विषयक दशाओं (environmental conditions) के आधार पर स्पष्ट की जा सकती हैं, परन्तु इतर फिर भी आकस्मिक संयोग का ही विषय बनी रहती हैं। इस अंश तक आवश्यकता पूर्व-निश्चयतावाद की ओर ही ले जाती है। आधुनिक विज्ञान यह स्वीकार कर चुका है, कि—प्लङ्क् के शब्दों में—"वह उन समस्याओं का, जिन से उसे काम पड़ता है, पूर्णरूपेण और सम्यक्तया स्पष्टीकरण करने की स्थिति में ही नहीं है।" विज्ञान का क्षेत्र निस्सन्देह जीवन के सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों से भिन्न है। हमारे जीवन का जो गुह्य अंग है, वही ग्रह-योगों द्वारा निरूपित होता है ; और नया रूप वही सत्वधारण करता है, जो गुप्त-सुप्त अवस्था में पड़ा हुआ (कर्म) था, किन्तु जिस में यह क्षमता थी, कि एक कुशल निर्देशक शक्ति (स्वतन्त्र-संकल्प-शक्ति) के अधीन पुनर्जीवित हो सके। अतः कर्म, अथवा भाग्य, वा पूर्वनिश्चयता, तीनों स्वतन्त्र-संकल्प (free-will) के संग-संग विद्यमान रह सकती हैं। यह है हिन्दु विचार-विन्दु ; और आधुनिक मत भी शनैः शनैः विज्ञान की इस महत्व-पूर्ण खोज की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

[४६] "मनुष्य के काम उन्हीं रेखाओं के संग-संग चलते जाते हैं, जो उस के अपने कर्म उस के लिए खैंच रहे हैं। इसे पूर्व-निश्चयता-वाद (Determinism) उस अंश तक ही कहा जा सकता है, जहाँ तक कि कर्मों को, जो कि वल-शाली हैं, मध्यकालीन और अटल (कर्मों का) नियम ओझल किए रखता है। पर वह जीवन, जिसका दिग्दर्शन स्वतन्त्र-संकल्प (free-will) द्वारा होता है, किसी पूर्व-विहित चित्राकृति, वा निदर्श (pattern), का अनुसरण नहीं करता। इस प्रकार निश्चयतावाद एक नियम-सा प्रतीत होता है,—एक नियम, जो प्रत्येक परिस्थिति और वस्तु-स्थिति की अपनी अपनी दशानुसार परिवर्तनों द्वारा कार्य करता है।"

भारतीय दर्शन-शास्त्र एक निर्दय विधाता (fate) की सत्ता से सदैव विमुख रहा है, जो जैसा चाहे, मनुष्य से खेल करे। इस के विपरीत, महर्षियों ने तो स्पष्ट-शब्दों में घोषणा की है, कि मनुष्य को काम करने का पूर्ण अधिकार है, परन्तु कृत-कर्मों को उन के फल पर कोई अधिकार नहीं। जन्मकुण्डली मनुष्य के चरित्र और स्वभाव को प्रदर्शित करती है। यदि वह यह दिखाए, कि मंगल और राहु के प्रभाव वश, वह एक अपराधी वनेगा, तो इस का यह अर्थ नहीं, कि उस के भाग्य में ही ऐसा विधान है। इस का अर्थ केवल इतना ही है, कि वह व्यक्ति ऐसी भ्रान्ति से है, कि जिस के अन्दर अपराध

---

[४६] 'भौतिकवाद, मार्क्सवाद, पूर्व-निश्चयतावाद और तर्कवाद', लेखक, दास गुप्त।

की ओर झुकाव होगा, परन्तु उस की ऐसी वृत्तियाँ समुचित अवधान और शिक्षण द्वारा रोकी जा सकती हैं। मान लीजिए, किसी वर्ष विशेष में उस के अन्दर भावोद्वेग (emotional crisis) आने के लक्षण पाए जाते हैं। तो यदि किसी को विदित हो जाय, कि यह अवस्था कव आएगी, तो निश्चय ही संकट का प्रतीकार किया जा सकता है। ज्यौतिष का अध्ययन औषध शास्त्र, कृषि शास्त्र, ऋतु-निरूपण (meteorology) और मनो-विज्ञान में सहायक हो कर, हमें लाभ पहुँचा सकता है। केवल एक वात है: ज्यौतिष को भाग्यवाद पर आश्रित वना देने का प्रयास नहीं करना चाहिए, और न इसे स्वतन्त्र-संकल्प (free-will) के उत्तरदायित्व से वचने के लिए साधनरूप में वर्तना चाहिए। भौतिक विज्ञान के विस्तीर्ण क्षेत्र में, कोई प्रश्न ज्यौतिष से वढ़ कर उच्च राष्ट्रीय महत्ता नहीं रखता।

[४७] "सो ज्यौतिष में आस्था होने से भाग्यवाद में निष्ठा तो क्या ही होगी, यों कहना चाहिए, कि ज्यौतिष की उपेक्षा करने से भाग्यवाद की ओर प्रवृत्ति वढ़ती है। कारण यह, कि प्रकृति के नियम कार्य में संलग्न रहते हैं, जव तक कि दुर्घटना घटित नहीं हो जाती; उसे पहले से जाना जा सकता है, और उस के दुष्प्रभाव घटाए जा सकते हैं, केवल उस अवस्था में, जव कि राजनीतिज्ञ और दार्शनिक आकाशीय चेतावनी की ओर ध्यान दें।"

ज्यौतिष का एक महत्वपूर्ण उपयोग शिक्षा के निर्देश (direction) और वृत्ति (profession) चुनने में किया

---

[४७] डॉ०. ए० जे० पियर्स लिखित, 'ज्यौतिष की पाठ्य-पुस्तक'।

जा सकता है। क्या हम अनेकशः अनुपयुक्त व्यक्तियों को काम पर लगे नहीं देखते? क्या कोई आधुनिक विज्ञान यह कहने का साहस कर सकता है, कि वह यह वता सकता है, कि कौन व्यक्ति किस काम के लिए सव से अधिक उपयुक्त है? शिक्षा सारी की सारी व्यर्थ जाती है, क्यों कि लाखों लोग अनुपयुक्त व्यवसायों में पड़ जाते हैं। यदि आधुनिक शिक्षा माता-पिता को इस योग्य नहीं वना पाती, कि वे वच्चों को वता सकें, कि वे कौनसा काम सव से अधिक समीचीनता से कर सकते हैं, तो समझ लीजिए कि अध्यापन के समस्त पाठ्य-क्रम में आमूल संशोधन की आवश्यकता है। एक दैवज्ञ उसी दिन, जव कि वच्चे का जन्म होता है, यह जान सकता है, कि उस का अभिनिवेश भौतिक विज्ञान की ओर होगा, अथवा दर्शन-शास्त्र की ओर।

आधुनिक मनोविज्ञान

कुछ थोड़े से शव्द ज्यौतिष और आधुनिक मनोविज्ञान के विषय में कह कर मैं यह निवन्ध समाप्त कर दूँगा। हिन्दु निस्सन्देह यह गौरव प्राप्त करने के अधिकारी हैं, कि उन्हों ने मानव प्राणियों के ज्यौतिषीय-तथा-मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण (astrological-*cum*-psychological classification) का भेद पाया, जो अनेकों वर्षों से आज दिन पर्यन्त चला आ रहा है।

ज्यौतिषीय वर्गीकरण का आधार भावात्मक और भौतिक गुणों की स्पष्ट-दृश्यमान भिन्नता है, यद्यपि "किसी भी आचरण (behaviour) का प्रत्यक्ष अखरने वाला गुण, जो अनेकशः पाया जाता है, वह भावों (emotions) का

उतार-चढ़ाव है।" अतः यह ध्यान देनें योग्य वात है, कि जन्म-कुण्डली में चन्द्र का स्थान सर्वतोऽधिक महत्व का है; क्यों कि चन्द्रमा मन का, एवं हमारे भावों के उतार-चढ़ाव द्वारा छोड़ी जाने वाली सब शक्तियों का 'कारक' है। वाह्यदृष्टि से—अर्थात् शारीरिक बनावट और रूपरंग की दृष्टि से—एक मनुष्य और दूसरे (मनुष्य) में कोई भेद नहीं है, यद्यपि प्रकृति-माता ने इस वात में सावधानी से काम लिया है, कि सम्भवतः कुछ एक विरले उदाहरणों के अतिरिक्त, किसी दो मनुष्यों के मुखानन की आकृति एक-सी नहीं है। इसी प्रकार, वहुत दीर्घ काल पर्यन्त ध्यान-पूर्वक अवलोकन करने से विदित हुआ है, कि भिन्न भिन्न व्यक्तियों के नाना अङ्गों में भी भिन्नता पाई जाती है। जैसे 'क' की नाक लम्बी हो सकती है; 'ख' की चपटी हो सकती है, इत्यादि। एवं इन भिन्नताओं के अनुसार, सूँघने की शक्तियों में भी भिन्नता दिखाई पड़ सकती है। ज्यौतिषीय लेखकों ने पृथिवी-, अग्नि-, जल- तथा वायु-तत्वों के प्राधान्यानुसार, चार अलग अलग भान्तियों को माना है। यहाँ 'तत्व' का अभिप्राय आधुनिक विज्ञान के 'तत्व' नहीं। किसी व्यक्ति का ज्यौतिषीय गुणों पर आश्रित मानसिक विन्यास जान लेना कोई साधारण वात नहीं है, क्यों कि इस से यह विश्लेषण हो जाता है, कि आप क्या हैं। वस्तुतः वारह राशियों के आधार पर किए गए वर्गों का उद्देश्य विशेष प्रकार के भेदों का तीक्ष्ण रीति से वर्गीकरण करना है।

व्यक्तितत्व के प्रकार

मनुष्यों के भावात्मक (emotional) आचरण का मूल-कारण आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने, जिसे वे 'विकृत

व्यक्तित्व' (affect personality) के नाम से पुकारते हैं, वताया हैं। 'विकार' (affect) ही एक मात्र ऐसी वस्तु नहीं है, जो मनुष्य जाति का विशेष गुण हो। जन्म-कुण्डली में चन्द्रमा की स्थिति 'विकृत व्यक्तित्व' ही को तो प्रकट करती है, एवं लग्न की राशि, तथा उस राशि का स्वामी, 'वास्तविक व्यक्तित्व' को प्रकट करते हैं—"मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ अन्धकार से आच्छादित पड़ी हैं, और वहुसंख्यक लोग उन्हें स्यात् पहचान भी नहीं सकते।" हमें 'विकृत' और 'वास्तविक' व्यक्तित्व का अन्तर समझाने के लिए किसी आधुनिक मनोवैज्ञानिक की आवश्यकता नहीं है, क्यों कि इन की व्याख्या ज्यौतिषीय लेखक पहले ही कर गए हैं, यद्यपि उन की भाषा अलङ्कारिक है। किसी मनुष्य के मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व पर विचार करते समय, यह ध्यान रखा जाता है, कि उस के भौतिक (वाह्य) गुण भी उस पर अंकित हों।

यह एक तथ्य है, कि जव "हमें कोई भावावेश वशतः किए गए किसी काम के लिए उत्तरदायी ठहराता है, तो हमारा कुछ ऐसा स्वभाव सा वन गया है, कि हम यह कह कर अपने काम की यथार्थता सिद्ध करते हैं, कि हम ने 'आवेश' वश ऐसा किया," और हम स्यात् ऐसा न करते, यदि हम उस प्रकार की भावात्मक (emotional) दशा में न होते। इस समाधान (justification) के अन्तर्गत, अपने आप को अपने 'विकार' से अलग करने का प्रयास पाया जाता है। अपि च, जव कोई पुरुष हमें हमारे 'विकार' अथवा भावों द्वारा अनुमान करने का यत्न करता है, तो हम कहते हैं, कि उस

में समझ नहीं है। दूसरे शब्दों में एक मनुष्य की परख करते समय, भावों के अतिरिक्त, अन्य गुणक (factors) भी महत्व रखते हैं। मनोवैज्ञानिक 'वास्तविक' व्यक्तित्व को 'अहम्' कहते हैं, जो भावयुक्त (emotional) व्यक्तित्व से सर्वथा भिन्न है। भावपूर्ण (अथवा भावयुक्त), व्यक्तित्व उदारचरितता, त्याग आदि गुणों में उच्चतर हो सकता है। पर इन का चिर पर्यन्त पालन नहीं किया जा सकता। चन्द्रमा 'भावपूर्ण व्यक्तित्व' को सूचित करता है, और लग्न अथवा उदय, 'वास्तविक व्यक्तित्व' अथवा 'अहम्' की सूचना देता है। चन्द्रमा इन्द्रियानुभूतियों, सहज वृत्तियों, मानसिक-आवेशों, सावधानता, कल्पना-शक्ति, और परिवर्तन-शीलता का द्योतक है। वास्तविक व्यक्तित्व वह है, जो एक भौतिक शरीर के अन्दर इस संसार में जन्म लेता है। यह अपने संग भिन्न प्रकारों के विचारों, अनुभूतियों और क्रियायों के लिए सहजात और अनधीत (untaught) रुचियाँ (अथवा प्रवृत्तियाँ) लाता है, जो उसे अपने पूर्व अस्तित्व से, जब वह केवल आत्मा के रूप में था, प्राप्त हुई हैं। ये सहजात गुण वर्तमान जीवन के अनुभव से बढ़ते और फैलते जाते हैं।

हम ने दो प्रकार के व्यक्तित्वों में भेद करने का यत्न इस दृष्टि से किया है, कि लग्न कारक को चन्द्र कारक (factor) से सर्वथा भिन्न समझ कर, उस का ठीक-ठीक मूल्य जान लेने की आवश्यकता पर यथोचित बल दिया जा सके।

ज्यौतिष हमें यह सिखाता है कि प्रयोजनों (motives) और प्रवृत्तियों में नाना प्रकार की भिन्नता होते हुए भी, लोगों के

कुछ समुदायों को अन्यों से पृथक् किया जा सकता है, क्यों कि जिस विधि से उन सब के अन्दर प्रेरणाएँ जागरित होती हैं (manner of motivation), वह विधि, वा ढंग, एक ही है। यदि यह ज्ञात हो जाय, कि अमुक व्यक्ति ज्यौतिष की दृष्टि से अमुक श्रेणी से सम्बन्ध रखता है, तो यह ज्ञान उस के सामाजिक, दाम्पत्य, और मनोवैज्ञानिक जीवन को संयमित बनाने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है, जिस से वह व्यक्ति न्यूनतम अवरोध का मार्ग अनुसरण करने के योग्य बनता है।

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति द्वादश राशिओं के अनुसार एक न एक कक्षा के अन्तर्गत अवश्य आ जाता है, और उसी के प्रभावानुसार विकसित होता रहता है, तो भी, किसी में यह सामर्थ्य नहीं, कि एक कक्षा, अथवा वर्ग का कोई ऐसा विवरण दे सके, "जो एक व्यक्ति पर सोलहों आने, अर्थात् पूरा पूरा, लागू हो सके, यद्यपि वह विवरण किसी विशेष अर्थ में सहस्रों लोगों पर घट सकता है। मनुष्य का अन्यों के साथ समरूप होना एक गुण है, और कई बातों में अद्वितीय होना उस की दूसरी विशेषता है"।

हम ने ऊपर के वक्तव्यों में 'वास्तविक' और 'विकार-युक्त' व्यक्तित्वों के केवल मनोवैज्ञानिक अंग की विवेचना की है; पर ज्यौतिषीय अंग पर विचार करने से व्यक्तित्व का एक अधिक व्यापक विवरण मिलता है।

युङ् महोदय ज्यौतिष का अनुमोदन करते हैं

आधुनिक मनो-वैज्ञानिक तीन वर्गों को मानते हैं,

(अ) विषय प्रधान वर्ग ;

(इ) चिन्तन प्रधान वर्ग ; तथा

(उ) भाव प्रधान वर्ग।

युङ् (Jung) के मतानुसार 'विषय-प्रधान' लोगों को इस बात से कोई प्रयोजन नहीं होता कि "एक विशेष वस्तु-स्थिति के गर्भ में क्या क्या सम्भावनाएँ छिपी पड़ी हैं"। जो लोग 'चिन्तन प्रधान वर्ग' से सम्बद्ध होते हैं, "वे कदापि अपने आप को उस परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना सकते, जिसे वे बुद्धि द्वारा सम्यक् अवगत नहीं कर पाते।" तृतीय वर्ग के लोग, "अपने आप को पूर्णतया सम्भावनाओं (possibilities) के मोह पर ही छोड़ देते हैं।" वस्तुतः यह वर्गीकरण बहुत सामान्य-सा (general) है।

ज्यौतिष न केवल मनोविज्ञान का पूरक है, वरन् यह निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों (concepts) के साथ सम्बद्ध है। वास्तव में **डॉ० युङ्** (Dr. Jung) ने ज्यौतिष की मान्यता का विश्वास निम्न-लिखित शब्दों में दिलाया है :

> "ज्यौतिष को विश्वास होना चाहिए, कि मनो-विज्ञान, बिना किसी प्रकार के प्रतिबन्ध वा संकोच के, उसे स्वीकार करता है, क्यों कि ज्यौतिष पुरा-कालीन मनो-विज्ञान का जितना भी ज्ञान-भण्डार है, उस समस्त का प्रतिनिधि है।"

हम ऊपर कह आए हैं, कि ज्यौतिष, विज्ञानों में भी परम-विज्ञान है, क्यों कि इस का सम्पर्क मनोविज्ञान के अतिरिक्त और बहुत सी वस्तुओं से है, जो ऋतु और कृषि

विषयक पूर्वोक्तियों से ले कर, राजनैतिक और व्यक्तिगत विषयों तक चली गई हैं। और न ही ज्यौतिष को—मूल रूप में—किसी व्यावहारिक अथवा प्रयोग-सिद्ध (empirical) विज्ञान के सम-तुल्य समझना चाहिए। ठीक जैसे निर्जीव पदार्थों के साथ व्यापार करने वाले विज्ञान का व्यवस्थापक नियम (organising principle) गणित विद्या है, वैसे ही ज्यौतिष उन विज्ञानों का व्यवस्थापक नियम है, जो सब सजीव पदार्थों को ध्यान में रखते हुए, जीवन तथा उस के महत्व को अपना (खोज का) विषय मानते हैं। **बर्ट्रण्ड् रस्सल्** (Bertrand Russel) कहते हैं, कि "ज्ञान की समस्त व्यावहारिक उपयोगिता, अथवा लाभ, तो इस की भविष्य-निरूपण की शक्ति पर ही निर्भर है ना।" ज्यौतिष इस परख पर पूरा उतरता है—इस में भविष्य-निरूपण की शक्ति है—इस लिए इसे विश्व-व्यापी ज्ञान समझना चाहिए, और अन्य शाखाओं से उत्तम समझना चाहिए, क्यों कि उन का उपयोग तो एक काल विशेष पर ही हो सकता है, जिस में लगातार अवेक्षण (observation) किया जा रहा हो।

ज्यौतिष के उपयोग की ओर पहले ही संकेत किया जा चुका है। ज्यौतिष के कामों की ओर आएँ, तो इस का सब से महत्वपूर्ण काम यह है, कि नीति-शास्त्र तथा विवेक (prudence) के विषय में जो प्राय रटी जाने वाली लोकोक्तियाँ पाठ्य-पुस्तकों में दी हुई हैं, उन से छुट्टी दिला देता है, एवं गति-रोध (deadlock) तथा अगम्य पथों में से बच निकलने का मार्ग दिखाता है। ज्यौतिष में विश्वास रखने से एक प्रकार

की नवीन सदाचार-भावन जागरित हो जाती है। यह साधारण लोगों की नैतिक त्रुटियों से निश्चय ही भिन्न, एवं कई वातों में अधिक मुक्ति-दायक है। ज्यौतिष जीवन-मरण की एक अनन्त शृङ्खला के रूप में कल्पना करता है—यह एक प्रकार का 'चक्रनेमी क्रमेण' ऊपर-नीचे जाने वाला खेल है, जिस में प्रत्यक्ष तो ऐसा प्रतीत होता है, कि अविश्वसनीय मात्रा में शक्ति व्यर्थ जा रही है, पर वास्तव में वह खिलौना उस शक्ति को समग्र ब्रह्माण्ड के योग फल में, सदैव के लिए संचित और सुरक्षित रखने के लिए, अर्पित करता रहता है। यह हमें अद्वैत-वाद का सिद्धान्त रूप से (theoretical) गुणावगुण विवेचन करने के लिए प्रवृत्त करता है, क्यों कि जो मनुष्य आज चोटी पर पहुँचा हुआ है, कल अधस्तात् दृष्टिगोचर होता है। इस में कुछ भी उसे अपनी इच्छा द्वारा प्राप्त नहीं हो गया, वरन् निरन्तर चक्रगति के पूर्व-विहित फलस्वरूप मिला है। हम सब निर्भीक शून्य-वादी नहीं हैं। अतः जीवन में अपनी असफलताओं को नक्षत्रों के माथे मढ़ कर हमें थोड़ी-सी सान्त्वना मिलती है। इस प्रकार (किसी भूल आदि का) उत्तरदायित्व किसी दूसरे पर डाल दिया जाता है, और यही जीवन में हम सब का उच्च लक्ष्य है!! अन्य प्रकार की क्षतिपूर्तियाँ भी, जो हमें ज्यौतिष प्रदान करता है, कोई घटिया मूल्य की नहीं हैं। यदि हमें विपत्ति अथवा संकट के समय का पहले से ज्ञान करा दिया जाय, तो इस चेतावनी से यह लाभ होगा, कि हम मध्य-मार्ग में ही दुर्दैव का सामना करके, और उसे अतर्कित भाव से पकड़ कर, उस का मेरुदण्ड भंग कर देने का उपक्रम कर लेंगे।

मनुष्य के सामाजिक जीवन में भी ज्यौतिष की महत्ता बहुमुखी है। मनुष्य की आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ ज्यौतिषीय अन्वेषण के पक्ष में निरन्तर प्रारोचक, अथवा प्रेरक शक्ति, का काम करती रहेंगी। हम समाज के अन्दर मनुष्य की आवश्यकताओं को अविलम्ब्यता (urgency) की अनेक मात्राओं (grades) में विभक्त कर सकते हैं, जिन में प्रत्येक के साथ ज्यौतिष का विशेष विशेष सम्बन्ध है। मानव-समाज की सक्रिय (dynamic) आवश्यकताओं को प्रेरक-शक्ति राजनैतिक आन्दोलनों से प्राप्त होती है, जिन की प्रवृत्ति ज्यौतिषीय गणना द्वारा स्पष्टतया निर्धारित की जा सकती है। यह पूर्व-ज्ञान मनुष्य के लिए एक अमूल्य सम्पत्ति होगी। मृत्यु और व्याधि की दर (rate, अर्घ) सुगमता से निर्धारित की जा सकती है, और ऐसे उपायों का अवलम्बन किया जा सकता है, जिन से ये दुर्घटनाएँ रुक जाएँ और रोग का नियन्त्रण किया जा सके। मनुष्य का जनन ही यदृच्छा में (at haphazard) होता है एवं मनुष्यों की संख्या तथा गुणों में इस कारण वश जो परिवर्तन आ जाते हैं, उन की सामाजिक प्रतिक्रिया बड़ी उग्र होती है। ये सब घटनाएँ ज्यौतिष द्वारा निर्धारित की जा सकती हैं, जिस से मनुष्य की अन्तिम प्रसन्नता में विघ्न न पड़ने पाए। वास्तव में मनुष्य जाति के सन्मुख बड़े बड़े विकट कार्य करने को पड़े हैं। ज्यौतिष इन आदर्शों की पूर्ति में सहायता देता है। ज्यौतिष का प्रच्छन्न मूल्य इस तथ्य के भीतर निहित है, कि आप को न्यूनतम अवरोध का मार्ग अनुसरण करने का आदेश दिया जाता है,

जिस से क्षुद्रतम प्रयास द्वारा भी आपको महत्तम साफल्य-प्राप्ति हो सकती है।

ज्यौतिष और मार्क्स्-वाद

कई लोग यह जानने को उत्सुक हैं, कि "ज्यौतिष विद्या के प्रति साधिकार मार्क्स्-वादियों, अथवा साम्य-वादियों, की क्या भावना है?" हमारा झुकाव कुछ कुछ इस मत की ओर है, कि कम्यूनिस्टों (साम्य-वादियों) के मन में ज्यौतिष के प्रति घृणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता; कारण यह, कि ज्यौतिष एक भावी अस्तित्व की कल्पना करता है, जो संसार के विषय में भौतिक दृष्टि-विन्दु (materialist view) के सर्वथा प्रतिकूल है। वे लोग साधारण मनुष्य को सरल अग्नि-दायक (incendiary) साधनों द्वारा देवों से भी अधिक उत्कृष्ट वना देने (apothesis) के स्वप्न ले रहे हैं। पर वे भूल जाते हैं, कि ज्यों ही वह असाधारण वना, वह साम्य-वादी राष्ट्र का परम शत्रु वन जायगा। एक विशुद्ध साम्य-वादी, यदि किसी को कहीं मिल जाय, अवश्य एक वीरत्वपूर्ण ढांचे का वना हुआ होगा, क्यों कि अपना युग स्थापित करने के लिए, वह अपनी पीढ़ी (generation) की सम्पूर्ण अवधि पर्यन्त, शतशः वर्षों में संचित उत्साह और निरुद्ध प्रवर्त्तकशक्ति (अर्थात् संवेग, momentum) के साथ, परिश्रम करता है। वह निस्सन्देह यह विश्वास अपने मन में धारण किए हुए है, कि जो प्रचारकीय लगन उसे काम करने को प्रेरित करती है, वही उस के अनन्तर दूसरों को भी प्रेरित करेगी, एवं उस का जनता-निष्ठ 'अल् डोरैडो' (El Dorado)—यदि एक वार वह

उसे अपने पाँवों पर खड़ा कर दे तो—सदैव के लिए वना रहेगा। यह वास्तव में एक प्राचीन भूल, वा भ्रान्ति, ही नवीन परिधान में प्रकट हुई है: पुरातन रहस्य-वाद ही, जो व्यक्ति के अमरत्व में विश्वास रखता था, एक उतने ही निराधार अन्ध विश्वास में परिणत हो गया है, कि एक राष्ट्र, अथवा समाज, सदैव जीवित रह सकता है। इस मनोरञ्जक गल्प के पीछे कितनी (थोड़ी) यथार्थता है, यह उस थोड़े थोड़े, पर स्थायी परिवर्तन से स्पष्ट ही है, जो साम्य-वाद के अन्दर, उस के अपने जन्म-स्थान में, और उस के जन्म-दिवस से ही, निरन्तर आता रहा है।

॥ ओं तत् सत् ॥

परिशिष्ट

प्रो० कार्ल युङ् का पत्र प्रो० बी० वी० रामन् के नाम

कुस्नाख्ट्—त्स०, सितम्बर ६, १९४७.

प्रिय प्रो० रामन्,

मुझे अभी 'ज्यौतिष पत्रिका' (The Astrological Magazine) तो नहीं मिली, पर फिर भी मैं आप के पत्र का उत्तर दे देना चाहता हूँ।

क्यों कि आप ज्यौतिष के विषय में मेरी सम्मति जानना चाहते हैं, मैं आपको बता सकता हूँ, कि मुझे मानव हृदय की इस विशेष क्रिया में ३० वर्ष से भी अधिक समय से अभिरुचि है। क्यों कि मैं एक मनो-वैज्ञानिक हूँ, मुझे अधिक रुचि, जो विशेष प्रकाश एक जन्म -कुण्डली चरित्र की विशिष्ट जटिलताओं पर डालती है, उस में है। क्लिष्ट मनो-वैज्ञानिक निदानों की अवस्था में मैं प्राय जन्म-कुण्डली मंगवा लिया करता हूँ, जिस से कि एक सर्वथा भिन्न दृष्टि-कोण से और गहन अवेक्षण किया जा सके। **मैं यह अवश्य कहूँगा कि मुझे अनेकशः ज्ञात हुआ है, कि ज्यौतिषीय तथ्य कतिपय ऐसी गुत्थियाँ सुल्झा पाए हैं, जो मैं अन्यथा कदाचित् समझ न सकता।** इस प्रकार के अनुभवों से मैं ने अपना यह मत बनाया है, कि ज्यौतिष एक मनो-वैज्ञानिक के लिए विशेष रूप से रोचक है, क्यों कि यह एक प्रकार के मनो-वैज्ञानिक अनुभव से परिपूर्ण है, जिसे हम 'प्रक्षिप्त (projected) कहते हैं—इस का अर्थ यह है, कि मनो-वैज्ञानिक तथ्य हमें मानों राशियों में मिलते हैं। पहले पहल इस से यह विचार उत्पन्न होगया था, कि यह कारक (factors) नक्षत्रों से उद्भूत हैं (अर्थात् भौतिक घटनाओं का संचालन साक्षात् तारागण कर रहे हैं)। पर वास्तव में वे उन के साथ केवल संकालिकता (synchronicity) की दशा में हैं (अर्थात् तारागण संचालन तो नहीं करते, पर उन की गतिविधि ठीक वैसी ही है,

जैसी भौमिक घटनाओं की, और दोनों संकालिक, अर्थात् एक ही समय, साथ साथ घटने वाले हैं)।

ज्यौतिषीय साहित्य में मुझे जिस वस्तु का अभाव प्रतीत होता है, वह मुख्यतः पारि-सांख्यानिक विधि (statistical method) है, जिस के द्वारा कतिपय मौलिक तथ्य वैज्ञानिक ढंग से संस्थापित हो सकते थे।

यह आशा करते हुए, कि इस उत्तर से आप की जिज्ञासा उपशमित हो जायगी,

अहमस्मि
भवदीयः
(हस्ताक्षर) सी० जी० युङ्

अधीत पुस्तकों की सूची

१. ज्यौतिपाध्ययन प्रवेशिका — लेखक : बी० सूर्यनारायण राव

२. मानवज्ञान, इस का प्रस्तार और सीमा — लेखक : वर्ट्रेण्ड् रस्सल्

३. सुवर्ण पुष्प का रहस्य — लेखक : कार्ल युङ्

४. जनमारियों के आघात और सूर्य की पुनरावर्तन क्रिया — लेखक : चिजेवस्की

५. विश्लेषणात्मक मनेविज्ञान को सर्मपित — लेखक : कार्ल् युङ्

६. इतिहास का अध्ययन — लेखक : ए० जे० टॉय्न् वी

७. विज्ञान-जगत् में ज्यौतिप का स्थान — लेखक : आरनल्ड् डब्ल्यू० मेयर्

८. सभ्यता के मुख्य उद्गम-स्थान — लेखक : ऍलिस्वर्थ् हण्टिङ्टन्

९. जीवित कोशाओं पर रश्मि-समूहों का प्रभाव — लेखक : डब्ल्यू० ई० ली

१०. जीवन का रहस्य — लेखक : जॅर्जिस् लारवोव्स्की

११. ज्यौतिष की पाठ्य-पुस्तक — लेखक : ए० जे० पियर्स

१२. दैनिक जीवन में ज्यौतिष — लेखक : रुपर्ट् ग्लीडो

१३. मार्क्सवाद, भौतिकवाद, पूर्व-निश्चयतावाद और तर्क — लेखक : डी० एन्० दास् गुप्त

१४. व्यास के ब्रह्म-सूत्र (आङ्गल-अनुवाद) — लेखक : श्रीधर मजुम्दार्

१५. विज्ञान की नवीन पृष्ठ-भूमि — लेखक : जेम्ज़् जीन्ज़्

१६. आधुनिक भौतिक-विज्ञान के प्रकाश में यह ब्रह्माण्ड — लेखक : प्लङ्क्
१७. हमार आस-पास का संसार — लेखक : जेम्ज़् जीन्ज़्
१८. व्यक्तित्व का ज्यौतिष — लेखक : डेन् रुढ्यार्
१९. ज्यौतिष का संक्षिप्त इतिहास — लेखक : टॅम्प्ल् हुङ्गाड्
२०. हिन्दु ज्यौतिप — लेखक : मनकरी पाण्डे
२१. ज्यौतिप, भाग्य तथा वैश्व-कारक — लेखक : वी० गोरे
२२. ज्यौतिषीय-जीवशास्त्र — लेखक : के० ई० क्रफ़ट्
२३. ज्यौतिष का सार — लेखक : गिओज़े मुल्लर्
२४. अफ्लातून् का विश्व-ज्ञान — अनुवादक : ऍफ़्० ऍम्० कॉर्न्फ़र्ड्
२५. आधुनिक विज्ञान के लिए आध्यात्मिक आधार — लेखक : ऍड्विन् ए० वर्थ्
२६. मन की पहुँच — लेखक : जे० वी० राइन्
२७. काल का मनो-विज्ञान — लेखक : मेरी स्टुअर्ट्
२८. योग वशिष्ठ
२९. बृहदारण्यक उपनिपद् — आङ्गल-भापानुवादक : स्वामी माधवानन्द
३०. नैतिक अपेक्षवाद — लेखक : ई० ए० वॅस्टर् मर्क्क्
३१. अदृश्य प्रभाव — लेखक : अलॅग्ज़ैण्डर् कैनन्
३२. अमेरिकन् ज्यौतिष—१९४२, १९४४ और १९४५
३३. अर्थ-शास्त्र पत्रिका—१९२१
३४. राजकीय पारिसांख्यानिक परिषद् की पत्रिका—१९२२

३५. कौटिल्य का अर्थ शास्त्र
(आङ्गल-भाषानुवाद) लेखक : आर० शामा शास्त्री

३६. वृहत् जातक

३७. वृहत् पराशर होरा

३८. पंच-सिद्धान्तिका

३९. वृहत् संहिता

४०. मुहूर्त चिन्तामणि

४१. अग्नि पुराण

४२. पतञ्जलि के योग-सूत्र

४३. धीरेन्द्रु संहिता